श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

ॐ

जिन महापुरुष की जीवनगाथा

इन पृष्ठोंमें अंकित की गयी है

उन्हीं

गुरुवर पूज्यपाद श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वतीके

चरणकमलोंमें

लेखककी श्रद्धा और भक्तिके साथ

समर्पित

ॐ

अपनी बात

पिछले दिनों मनकी घोर अशान्तावस्थाके समय शान्ति लाभके उद्देश्यसे मैंने स्वामीजीकी जीवनी लिखनी शुरू की थी। इससे मैं उद्देश्यमें सफलता तो अवश्य प्राप्त कर सका, पर खयाल हुआ कि इसे यदि प्रकाशित किया जाय तो सम्भव है मेरी तरह और भी कुछ लोगोंको इससे लाभ हो और उनको शान्ति मिले। यह बात मैंने शिवानन्द पब्लिकेशन लीगकी कलकत्ता शाखाके अध्यक्ष श्री स्वामी कैवल्यानन्दजीसे कही। कागजकी घोर तंगी रहते हुए भी स्वामीजीने मेरा अनुरोध स्वीकार कर लिया। पहले विचार था कि पुस्तक ईस्टर साधना सप्ताहके अवसर पर प्रकाशित कर दी जाय, पर मार्गमें कुछ कठिनाइयाँ आ उपस्थित हुईं अतएव पुस्तक कुछ विलम्बसे निकल रही है। पुस्तकका लिखना और छपना दोनों इतनी शीघ्रतामें हुए हैं कि बहुत कुछ, जो मैं देना चाहता था, न दे सका। अगले संस्करणों-में पुस्तकमें यथेष्ट सुधार और परिवर्द्धन हो सकेंगे, अभी तो, यह इसी रूपमें निकल रही है।

स्वामी कैवल्यानन्दजीकी सहायताके बिना पुस्तक किसी भी अवस्थामें न प्रकाशित हो सकती थी। इसलिए स्वामीजी का मैं कितना ऋणी हूं, यह मैं ही जानता हूं।

यदि यह पुस्तक मेरी ही तरह पाठकोंको भी कुछ शान्ति दे सका तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगा।

—महेन्द्रनाथ शर्मा।

विषय-सूची

स्वामी शिवानन्द

१

वंश परिचय और जन्म

ऋषिकेशसे देवप्रयाग जानेवाले राजमार्ग पर यदि आ
ऋषिकेश और लक्ष्मण झूलाके ठीक बीचोबीच इस राजपथके कुछ नीचे आपको दाहिने हाथकी ओर कुछ आश्रम मिलेंगे। ये आश्रम जाह्नवी-तट पर स्थित हैं। इनकी स्थिति इतनी मनोरम और रमणीक है कि देखते ही बनता है। उनके सामने तो पापनाशिनीकी मन्थर गतिसे बहती हुई उज्ज्वल, धवल, शान्त, गम्भीर तरगें हैं और पीछे टिहरी राज्यकी पर्वत श्रेणियाँ खड़ी इस प्रकार खड़ी हैं मानो समस्त आपत्तियों-को रोक लेंगी। एक ओर गगाकी धारा है जो समस्त दुःख-दैन्यको

बहा ले जाती है, दूसरी ओर वे पर्वत मालाएं हैं जो किसी प्रकारकी चिन्ता और परेशानीको पास नहीं फटकने देतीं। और इन्हीं पौधों से आच्छन्न है जिन्हें आनन्द कुटीर कहते हैं। इसकी स्थिति ही ऐसी है कि किसी प्रकारसे निरानन्दकी कल्पना नहीं की जा सकती। इस आनन्दकी अवस्थाका वर्द्धमान करने वाली यहां एक महान शक्ति है। इस शक्तिके समीप जाते ही दीन, दुखी और चिन्ता ग्रस्त प्राणी क्षण मात्रमें आनन्द और निश्चिन्तताका अनुभव करने लगता है।

अग्निमें सभी प्रकारके मैल भस्म कर पदार्थोंको निर्मल बना देनेकी अद्भुत क्षमता है। यह अग्निका विशेष गुण है। ठीक इसी प्रकार आनन्द कुटीरके भीतर अवस्थित आनन्द कुटीरको तथा इसके यहांके समस्त संसारको चेतनता और स्फूर्ति देनेवाली उस महान शक्तिके पास पहुंचते ही दुखी और आर्त्त जनोंके सारे क्लेश विनष्ट हो जाते हैं। आनन्द कुटीरमें पहुंच कर प्राणी आनन्द और तज्जनित शान्तिके अतिरिक्त किसी अन्य भावका अनुभव ही नहीं कर पाता। और यह सब होता है आनन्द कुटीरको आनन्द प्रदान करने वाली उसी शक्तिके कारण। इन पृष्ठोंमें हम इसी शक्ति का परिचय देनेका उद्योग करेंगे।

आनन्द कुटीरके समीप उपर्युक्त राजमार्ग पर यदि प्रातः मुहूर्तमें आप चलें तो गैरिक वस्त्रधारी, परम तेजस्वी, भव्य एवं दिव्य

आकृतिके एक महात्माको आप देखेंगे। आप अपनी धुनमें चले जा रहे हैं। किन्तु थोड़ा ही आगे बढ़ने पर आपको अति मधुर एवं भावपूर्ण स्वरमें "ॐ नमः शिवाय" का उच्चारण सुननेका अवसर मिलता है। आपकी हृत्तन्त्री थिरक उठती है। आप पीछे मुड़कर देखते हैं और उन्हीं महात्मन्‌को पुनः "ॐ नमः शिवाय" कहते हुए सुनते हैं। आप आश्चर्यमें पड़ जाते हैं। आप चाहते हैं पुनः इन्हें सुनें। एक बार नहीं बार-बार इन्हें सुनते रहें। आप तृप्त नहीं होते। आपकी आकांक्षा कम नहीं होती। यह भावपूर्ण, मधुर स्वर आपके कानमें गूंजता रहता है। पर क्या आपने इनका अभिप्राय समझा? आप इनको सुनना तो चाहते हैं पर आप इनके अभिप्रायको नहीं समझ पा रहे हैं। अच्छा, तो हम आपको बतलाते हैं। उक्त पदके द्वारा उन तेजः पुञ्ज महात्मन्‌ने आपका अभिवादन किया है। और ऐसे ही जो लोग भी मिलते हैं ये महात्मा इस पदके द्वारा उन सभी लोगोंका अभिवादन करते हैं। सबको ही वह भगवान शिवकी प्रतिमूर्ति समझते हैं और मिलने पर सबका इसी प्रकार अभिवादन करते हैं। इन महात्माको देखकर आपका हृदय श्रद्धा और भक्तिमे झुक जाता है और आप चुप-चाप उनके चरणोंमें अपना मस्तक झुका देते हैं। आपने स्यात् इन महात्मन्‌को पहचाना नहीं। यही आनन्द कुटीरको आनन्दमय बनानेवाले योगिराज स्वामी शिवानन्द सरस्वती हैं। इनको देखकर आपके अन्दर इनके सम्बन्धमें अधिकसे अधिक जानकारी प्राप्त

करनेकी इच्छाका उत्पन्न होना स्वाभाविक है। आइये हम आपकी इस इच्छाको पूर्ण करनेका प्रयत्न करें।

*   *   *   *

अन्तिम हिन्दू सम्राट श्री हर्षवर्धनके बाद हिन्दू जातिने सुख और शान्तिका अनुभव नहीं किया। हर्षके बाद लगभग ५५० वर्षों तक हिन्दुओंका राज्य भारतवर्षमें रहा। परन्तु इस अवधिमें एकछत्र शासन नहीं हुआ। छोटे-छोटे राजे छोटे-छोटे प्रदेशोंपर राज्य करते थे। यद्यपि अपने-अपने राज्यमें ये नरेश शान्ति और सुव्यवस्था रखने का उद्योग करते थे तथापि इनकी आपसकी लड़ाइयों और झगड़ोंके कारण देशमें निरन्तर अशान्ति बनी रहती थी। प्रजाको शान्ति नहीं मिल पाती थी। इस अवस्थाका अवसान पठानों और तुर्कोंके आनेपर किन्हीं अशोंमें हुआ तो सही, क्योंकि उनमें कइयोंने सारे भारतको अपने झण्डेके नीचे रखा परन्तु उनकी धर्मान्धता और कट्टरताने पहलेसे भी अधिक अशान्ति उत्पन्न कर दी। फल यह हुआ कि देशकी उन्नति किसी दिशामें भी नहीं हुई। उधर दक्षिणमें विजय-नगर राज्यका भी पतन हो गया। इस प्रकार हिन्दुओंके लिए धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक सभी दिशाओंमें पतनका सूत्रपात हुआ। इस अवस्थामें आगे चलकर कहीं अकबरके शासन कालमें, उसकी धार्मिक सहिष्णुताकी नीतिके कारण, सुधार हुआ।

मुसलमानोंके अत्याचारोंसे पिसती हुई जनताके पास जब अपनी रक्षा करनेकी शक्ति न रह गयी तो वह भगवानकी शरणमें गयी। यही कारण है कि उस युगमें इतने सत और महात्मा हुए। और सच पूछिये तो इन साधु सन्तोंने ही हिन्दुओंकी, इनके गौरवमय अतीतकी याद दिलाकर, रक्षा की। अकबरकी शान्त और सुव्यवस्थित शासन प्रणालीने देशको चतुर्मुखी उन्नतिका रास्ता दिखाया। अकबर, जहागीर और शाहजहाके राजत्वकालमें साहित्य, सगीत, कला, धर्म, कर्म सभीको उन्नति हुई। यही समय था कि देशने पण्डितराज जगन्नाथ जैसे कलाविदोंको उत्पन्न किया।

ठीक उसी समय दक्षिणमें सस्कृत साहित्यके उद्‌भट विद्वान और प्रतिभाशाली लेखक श्री अप्पय दीक्षित भी हुए। अप्पय दीक्षितका काल १६ वीं शताब्दीमें था। ऐसा कहा जाता है कि आप काव्य क्षेत्रमें पण्डितराज जगन्नाथके प्रतिद्वन्द्वी थे। यद्यपि आपकी प्रतिभाशालिनी एवं प्रगल्भ रचनाएं वेदान्त विषयक ही हैं तथापि सस्कृत साहित्यका ऐसा कोई भी अग नहीं है, जो आपके लिये अछूता हो—चाहे वह काव्य क्षेत्र हो, चाहे काव्य शास्त्र सम्बन्धी और चाहे वेदान्त विषयक हो। आपकी सभी रचनाए आपकी महानता और योग्यताकी परिचायक हैं। रीति सम्बन्धी ग्रन्थोंमें आपका 'कुवलयानन्द' नामक ग्रन्थ इतना सुप्रसिद्ध और प्रचलित है कि विद्यार्थियोंको सर्व प्रथम उसीका अभ्यास कराया जाता है। पुस्तककी उपयोगिता

करनेकी इच्छाका उत्पन्न होना स्वाभाविक है। आइये हम आपकी इस इच्छाको पूर्ण करनेका प्रयत्न करें।

* * * *

अन्तिम हिन्दू सम्राट श्री हर्षवर्धनके बाद हिन्दू जातिने सुख और शान्तिका अनुभव नहीं किया। हर्षके बाद लगभग ५५० वर्षों तक हिन्दुओंका राज्य भारतवर्षमें रहा। परन्तु इस अवधिमें एकछत्र शासन नहीं हुआ। छोटे-छोटे राजे छोटे-छोटे प्रदेशोंपर राज्य करते थे। यद्यपि अपने-अपने राज्यमें ये नरेश शान्ति और सुव्यवस्था रखने का उद्योग करते थे तथापि इनकी आपसकी लड़ाइयों और झगड़ोंके कारण देशमें निरन्तर अशान्ति बनी रहती थी। प्रजाको शान्ति नहीं मिल पाती थी। इस अवस्थाका अवसान पठानों और तुर्कोंके आनेपर किन्हीं अशोंमें हुआ तो सही, क्योंकि उनमें कइयोंने सारे भारतको अपने झण्डेके नीचे रखा परन्तु उनकी धर्मान्धता और कट्टरताने पहलेसे भी अधिक अशान्ति उत्पन्न कर दी। फल यह हुआ कि देशकी उन्नति किसी दिशामें भी नहीं हुई। उधर दक्षिणमें विजयनगर राज्यका भी पतन हो गया। इस प्रकार हिन्दुओंके लिए धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक सभी दिशाओंमें पतनका सूत्रपात हुआ। इस अवस्थामें आगे चलकर कहीं अकबरके राजत्व कालमें, उसकी धार्मिक सहिष्णुताकी नीतिके कारण, सुधार हुआ।

मुसलमानोंके अत्याचारोंसे पिसती हुई जनताके पास जब अपनी रक्षा करनेकी शक्ति न रह गयी तो वह भगवानकी शरणमें गयी। यही कारण है कि उस युगमें इतने सत और महात्मा हुए। और सच पूछिये तो इन साधु सन्तोंने ही हिन्दुओंकी, इनके गौरवमय अतीतकी याद दिलाकर, रक्षा की। अकबरकी शान्त और सुव्यवस्थित शासन प्रणालीने देशको चतुर्मुखी उन्नतिका रास्ता दिखाया। अकबर, जहांगीर और शाहजहाके राजत्वकालमें साहित्य, सगीत, कला, धर्म, कर्म सभीकी उन्नति हुई। यही समय था कि देशने पण्डितराज जगन्नाथ जैसे कलाविदोंको उत्पन्न किया।

ठीक उसी समय दक्षिणमें सस्कृत साहित्यके उद्‌भट विद्वान और प्रतिभाशाली लेखक श्री अप्पय दीक्षित भी हुए। अप्पय दीक्षितका काल १६ वीं शताब्दीमें था। ऐसा कहा जाता है कि आप काव्य क्षेत्रमें पण्डितराज जगन्नाथके प्रतिद्वन्द्वी थे। यद्यपि आपकी प्रतिभाशालिनी एवं प्रगल्भ रचनाएं वेदान्त विषयक ही हैं तथापि सस्कृत साहित्यका ऐसा कोई भी अंग नहीं है, जो आपके लिये अछूता हो— चाहे वह काव्य क्षेत्र हो. चाहे काव्य शास्त्र सम्बन्धी और चाहे वेदान्त विषयक हो। आपकी सभी रचनाएं आपकी महानता और योग्यताकी परिचायक हैं। रीति सम्बन्धी ग्रन्थोंमें आपका 'कुवलयानन्द' नामक ग्रन्थ इतना सुप्रसिद्ध और प्रचलित है कि विद्यार्थियोंको सर्व प्रथम उसीका अभ्यास कराया जाता है। पुस्तककी उपयोगिता

करनेकी इच्छाका उत्पन्न होना स्वाभाविक है। आइये हम आपकी इस इच्छाको पूर्ण करनेका प्रयत्न करें।

*　　*　　*　　*

अन्तिम हिन्दू सम्राट श्री हर्षवर्धनके बाद हिन्दू जातिने सुख और शान्तिका अनुभव नहीं किया। हर्षके बाद लगभग ५५० वर्षों तक हिन्दुओंका राज्य भारतवर्षमें रहा। परन्तु इस अवधिमें एकछत्र शासन नहीं हुआ। छोटे छोटे राजे छोटे-छोटे प्रदेशोंपर राज्य करते थे। यद्यपि अपने-अपने राज्यमें वे नरेश शान्ति और सुव्यवस्था रखने का उद्योग करते थे तथापि इनकी आपसकी लड़ाइयों और झगड़ोंके कारण देशमें निरन्तर अशान्ति बनी रहती थी। प्रजाको शान्ति नहीं मिल पाती थी। इस अवस्थाका अवसान पठानों और तुर्कोंके आनेपर किन्हीं अंशोंमें हुआ तो सही, क्योंकि उनमें कइयोंने सारे भारतको अपने झण्डेके नीचे रखा परन्तु उनकी धर्मान्धता और कट्टरताने पहलेसे भी अधिक अशान्ति उत्पन्न कर दी। फल यह हुआ कि देशकी उन्नति किसी दिशामें भी नहीं हुई। उधर दक्षिणमें विजयनगर राज्यका भी पतन हो गया। इस प्रकार हिन्दुओंके लिए धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक सभी दिशाओंमें पतनका सूत्रपात हुआ। इस अवस्थामें आगे चलकर कहीं अकबरके शासन कालमें, उसकी धार्मिक सहिष्णुताकी नीतिके कारण, सुधार हुआ।

मुसलमानोंके अत्याचारोंसे पिसती हुई जनताके पास जब अपनी रक्षा करनेकी शक्ति न रह गयी तो वह भगवानकी शरणमें गयी। यही कारण है कि उस युगमें इतने संत और महात्मा हुए। और सच पूछिये तो इन साधु सन्तोंने ही हिन्दुओंकी, इनके गौरवमय अतीतकी याद दिलाकर, रक्षा की। अकबरकी शान्त और सुव्यवस्थित शासन प्रणालीने देशको चतुर्मुखी उन्नतिका रास्ता दिखाया। अकबर, जहांगीर और शाहजहांके राजत्वकालमें साहित्य, सगीत, कला, धर्म, कर्म सभीकी उन्नति हुई। यही समय था कि देशने पण्डितराज जगन्नाथ जैसे कलाविदोंको उत्पन्न किया।

ठीक उसी समय दक्षिणमें संस्कृत साहित्यके उद्भट विद्वान और प्रतिभाशाली लेखक श्री अप्पय दीक्षित भी हुए। अप्पय दीक्षितका काल १६ वीं शताब्दीमें था। ऐसा कहा जाता है कि आप काव्य क्षेत्रमें पण्डितराज जगन्नाथके प्रतिद्वन्द्वी थे। यद्यपि आपकी प्रतिभाशालिनी एवं प्रगल्भ रचनाएं वेदान्त विषयक ही हैं तथापि संस्कृत साहित्यका ऐसा कोई भी अंग नहीं है, जो आपके लिये अछूता हो— चाहे वह काव्य क्षेत्र हो, चाहे काव्य शास्त्र सम्बन्धी और चाहे वेदान्त विषयक हो। आपकी सभी रचनाएं आपकी महानता और योग्यताकी परिचायक हैं। रीति सम्बन्धी ग्रन्थोंमें आपका 'कुवलयानन्द' नामक ग्रन्थ इतना सुप्रसिद्ध और प्रचलित है कि विद्यार्थियोंको

और लोकप्रियताका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि यद्यपि पण्डितराज जगन्नाथने स्वरचित 'रसगंगाधर' में उक्त पुस्तककी विकट आलोचना की है तथापि पुस्तककी लोकप्रियतामें कोई कमी नहीं आयी है। भगवान शिवकी प्रशस्तिमें आपने जो छन्द रचे हैं वे अमर छन्द कहे जा सकते हैं। वेदान्त पर आपने परिमल नामक जो भाष्य लिखा है वह आपकी दार्शनिकताको प्रकट करनेके लिए एक प्रकाश स्तम्भ है, जो युग-युग तक चलेगा।

अप्पय दीक्षित भगवान शिवके अवतार कहे जाते हैं। ऐसे महापुरुषोंके जीवनसे सम्बन्धित अनेक चमत्कारिक घटनाओंका उल्लेख किया जाता है। आपके सम्बन्धमें भी एक इसी प्रकारकी घटना प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि जब आप तिरुपती (दक्षिण भारत) के विष्णुमन्दिरमें भगवानका दर्शन करने गये तो शैव होनेके कारण वैष्णव पुजारियोंने आपको मन्दिरमें न घुसने दिया। प्रातःकाल जब मन्दिरके पट खुले तो महन्त और पुजारियोंको यह देख कर आश्चर्य और साथ ही भय हुआ कि विष्णुमूर्ति शिवमूर्तिमें बदल गयी है। त्रस्त और आश्चर्यचकित महन्तने अप्पय दीक्षितसे क्षमा याचना की और विनय की कि वे शिवमूर्तिको पुनः विष्णुमूर्तिमें बदल दें।

इन्हीं अप्पय दीक्षितके कुलमें १८ वीं शताब्दीमें पट्टामदाई ग्राममें पी एस वेंगु अय्यर नामके एक सज्जनका जन्म हुआ। वेंगु अय्यर एक जबर्दस्त शिवभक्त, ज्ञानी और साधु पुरुष थे। आपके सम्बन्धमें जो भी

आया उसके ही मुंखसे निकला— वेंगु अय्यर एक महान् महापुरुष हैं। मद्रास हाईकोर्टके जज सर सुब्रह्मण्य अय्यर आपकेसहपाठी थे और आपको बहुत सम्मान और आदरकी दृष्टिसे देखा करते थे। आपके पितामह पट्टामदाईके जमींदार थे। वेंगु अय्यर एटियापुरम् राज्यके तहसीलदार थे। आपकी साधुता और सज्जनताके कारण एटियापुरम्के राजा साहेब तथा वहांकी जनता आपके प्रति श्रद्धाका भाव रखते थे। इन्हीं वेंगु अय्यरके घर वृहस्पतिवार ८ सितम्बर १८८७को प्रातःकाल सूर्योदयके समय स्वामी शिवानन्दजीका जन्म हुआ। उस समय भरणी नक्षत्र व्याप रहा था।

सन्यासाश्रममें दीक्षित होनेके पूर्व स्वामीजीका नाम पी वी कुप्पू स्वामी अय्यर था। आगे हम इसी नामका व्यवहार करेंगे। कुप्पू स्वामी अपने पिताकी अन्तिम सन्तान थे। आपके दो बड़े भाई और थे। सबसे बड़े भाई पी वी वीरराधव अय्यर थे; जो एटियापुरके राजा साहेबके निजी मन्त्री थे और दूसरे पी वी शिवराम अय्यर थे जो डाकखानेके इन्सपेक्टर थे। आपकी माताका नाम पार्वती अम्मल था। आपके चाचा अप्पय शिवम् सस्कृतके प्रकाण्ड पण्डित थे। आपके आस पासके लोग आपका बड़ा सम्मान करते थे।

सुदूर दक्षिणमें ताम्रपरणी नामकी एक अतिपवित्र और प्रसिद्ध नदी है। वाल्मीकि रामायणमें भी इस नदीका वर्णन आता है। यह नदी पहाड़ोंकी जिन तलहटियोंसे होकर बहती है उनमें तांबेकी खानें हैं

और इसी कारण इस नदीका नाम ताम्रपरणी पड़ा भी है। दक्षिणमें इसको दक्षिणगंगा कहते हैं और गंगाकी तरह ही इसको पावन और पूज्य भी समझते हैं। इस नदीका जल अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद और पाचक है। इसी नदीसे एक नहर निकली है जो पट्टामदाईके चारों ओर हारसदृश होकर बहती है। जिन्होंने अयोध्या और सरयूकी स्थिति देखी होगी वे पट्टामदाई और इस नहरकी स्थितिकी कल्पना कर सकते हैं। ऐसा रमणीक यह पट्टामदाई ग्राम है।

पट्टामदाई तिन्नेवेली जंक्शनसे दस मीलकी दूरी पर स्थित है। इस स्थानकी सुन्दरतामें दो अन्य बातोंसे वृद्धि हो जाती है। एक तो यहां धानके लहराते हुए हरे-हरे खेत देखनेको मिलते हैं दूसरे इस ग्रामके चारों ओर दूर तक आमके बाग फैले हुए हैं। पट्टामदाईमें ऐसी सुन्दर और कलापूर्ण चटाइयां बनती हैं जैसी संसारमें कहीं भी नहीं बनतीं। इस ग्राममें सुप्रसिद्ध संस्कृतज्ञ स्वर्गीय श्री रामशेष अय्यर द्वारा संस्थापित एक हाईस्कूल भी है। इस ग्रामकी सबसे बड़ी विशेषता है अधिक संख्यामें संगीतज्ञोंकी उत्पत्ति। इस गांवके सभी लोग संगीतप्रेमी होते हैं और अत्यन्त उच्च कोटिके कलापूर्ण गाने गा सकते हैं। पट्टामदाईको संसारके कुछ विशिष्ट संगीतज्ञोंको उत्पन्न करनेका श्रेय है। प्राकृतिक छटासे पूर्ण इसी मनोरम और विशिष्ट गांवमें पी॰ वी॰ कुप्पू स्वामीका जन्म हुआ था।

२

बाल्यकाल और छात्र जीवन

कुप्पू स्वामी, जैसा कि ऊपर कहा गया है, अपने पिताकी अन्तिम सन्तान थे। माता-पिताको अपनी अन्तिम सन्तानसे बड़ा स्नेह होता है। इसलिए प्रायः यह देखा जाता है कि इस प्रकारके स्नेहाधिक्यके कारण यह अन्तिम सन्तान बिगड़ जाती है, वह भी उस हालतमें जब कि माता-पिता सम्पन्न हों। किन्तु क्या हम कुप्पू स्वामीके विषयमें भी ऐसा कह सकते हैं? माता-पिताकी अधिकतम स्नेहपालित सन्तान होनेपर भी कुप्पू स्वामीके अन्दर किसी ऐसे विचारका उदय न हुआ जो उनको किसी अन्य पथपर ले जाता। आपके विद्वान और सन्त पिताको देख भालने ही आपको आज इस रूपमें हमारे सामने लाकर पेश किया है।

बालकके कोमल मस्तिष्क और शुद्ध मनपर किसी भी बातकी छाप तुरन्त पड़ती है। लड़कपनमें जैसी सगत उसकी होती है उसके

अनुरूप उसके संस्कार ही बनते हैं और बयस्क होनेपर वह यदि उनसे मुक्त होना चाहे तो जल्दी मुक्त नहीं हो सकता। यही कारण है कि लड़कपनमें मनुष्य जो कुछ सीख लेता है वह उसके लिए स्वभाव सिद्ध हो जाता है। अतः सन्तानकी बाल्यावस्थामें अधिक ध्यानसे देखना पड़ता है और देखना चाहिए भी।

कुप्पू स्वामीके माता-पिता इस बातका पूरा ध्यान रखते थे कि उनकी अन्तिम सन्तान होनेके कारण कुप्पूस्वामी स्नेहमें पड़कर बिगड़े नहीं वरन् एक आदर्श व्यक्ति हों। इसलिए आपकी शिक्षा दीक्षाका जहां सुप्रबन्ध किया गया वहां आपके अन्दर शरीर और साथ ही मनको सुपुष्ट और विकसित करनेके भाव भी उत्पन्न किये गये। आपको यह सिखाया गया कि यदि शरीर ठीक रहा तो मन भी ठीक रहेगा। प्रारम्भसे ही आपके भीतर शरीरको विकसित करनेकी इच्छा रही। आपका शरीर जिस प्रकार क्रमशः आयुकी वृद्धिके साथ बढ़ता जाता था उसी प्रकार वह कष्ट-सहिष्णु बलवान और दृढ़ भी होता जाता था। एटियापुरम्‌के राजा साहेब आपके बलवान शरीरके बड़े प्रशंसक रहे और सदा आपको शारीरिक विकासके लिये उत्साहित करते रहे।

इसके साथ ही आप पढ़ने लिखनेमें भी सबसे आगे रहे। आपकी तीव्र बुद्धि और जबर्दस्त मेधाने आपके शिक्षकोंको आपकी ओर सदा ही आकृष्ट किया। परीक्षाओंमें कुप्पू स्वामी सदा अच्छे नम्बर

पाते रहे। वार्षिकोत्सवोंके अवसर पर आपको काफी इनाम मिलते रहे। क्या सुन्दर संयोग है कि मन, मस्तिष्क और शरीर एक साथ ही उन्नति करते रहे।

आज दिन हम देखते हैं कि स्वामी शिवानन्द कितने सुन्दर नाटक लिख लेते हैं और कैसे उत्तम ढगसे अभिनयोंका आयोजन कर लेते हैं, किन्तु इसके बीज उस समय ही आपके भीतर पड़ चुके थे। एक बार, जब मद्रासके गवर्नर आपके स्कूलमें गये थे तो, आपने स्वागत गान गाया था और उनके स्वागतमें एक जबर्दस्त भाषण किया था। कालेजके दिनोंमें हेलेना आफ एथेन्स (शेक्स पीयरके एक नाटककी एक पात्री) का आपने जो पार्ट किया था वह किसी भी अभिनेताके लिये गर्वकी बात हो सकती है। शेक्स पीयर भी तो पहले अभिनयोंमें भाग ही लेते रहे, पीछे वह कुशल कलाकार हो गये। आजके स्वामी शिवानन्दके अन्दर हम जो भाषण कौशल, नाट्य रचना प्रवीणता और अभिनय चातुरी आदि देखते हैं उसके मूलमें कुप्पू स्वामीके प्रारम्भिक जीवनका हाथ है।

१९०३ में मेट्रिकुलेशन परीक्षा पास करनेके बाद आप त्रिचनापली कालेजमें भर्ती हो गये और तीन-चार वर्षों तक वहाँ रहनेके बाद आप मेडिकल कालेजमें भर्ती हो गये। वहाँसे डाक्टरी परीक्षा पास करनेके बाद आपने जीवनमें प्रवेश किया। पढ़नेके समय आपने तामिल संघ द्वारा सचालित तामिलकी भी एक परीक्षा पास की था।

३

डाक्टरी पेशेमें

—◦—◦—

डाक्टर हो जानेके बाद कुप्पू स्वामी अय्यरने अपने यहां ही कुछ दिनों तक चिकित्सकका कार्य किया। डाक्टरीके प्रत्येक विभागमें कुप्पूस्वामीने दक्षता और निपुणता प्राप्त की। क्या रसायन शास्त्र, क्या काय चिकित्सा और क्या शल्य चिकित्सा सबमें कुप्पू-स्वामीको समानाधिकार प्राप्त था। ऊर्ध्वांग चिकित्सा और विशेषकर नेत्र सम्बन्धी रोगोंको अच्छा करनेमें कुप्पू स्वामीने चिकित्सककी हैसि-यतसे बहुत नाम और यश कमाया। दक्षिण भारतमें जितने दिनोंतक डा० कुप्पूस्वामी अय्यर थे उतने दिनों तक उन्होंने डाक्टरीसे सम्बन्ध रखनेवाली एक पत्रिकाका सम्पादन किया। सम्पादकके इस कार्यको डा० कुप्पूस्वामीने तीन वर्षों तक किया। पत्रिकाके इस सम्पादन कालमें ही प्रमाणित हो गया कि डा० कुप्पू स्वामीका अंग्रेजी भाषापर असाधारण अधि-कार है। उस समय ही आपकी भाषा इतनी सरल, चुस्त और

प्रभावपूर्ण होती थी कि पढ़ने वालेका मन बरबस आकृष्ट कर लेती थी। पाठक उस लेखको पढ़कर तृप्त नहीं होते थे और बार बार पढ़ना चाहते थे। यही शैलीकी विशेषता है। डा० कुप्पूस्वामीके अन्दर एक विशिष्ट पत्रकारके सभी लक्षण थे। आपके अन्दर परिश्रम और उद्योगशीलता इतनी अधिक थी कि आप अपने समस्त लेख स्वयं टाइप कर लिया करते थे।

धनार्जनसे भी बलवती आपके अन्दर सेवाकी भावना थी। आप कितने चिकित्सकोंको देखेंगे कि उनको अपनी फीस और औषधिके मूल्य की ही अधिक चिन्ता रहती है। रोगीका हित चिन्तन अथवा उसकी सेवा शुश्रूषाकी ओर वे चिकित्सक कम ही ध्यान देते हैं। डा० कुप्पूस्वामीमें यह बात न थी। आपको अपनी फीस और दवाके दामसे भी अधिक चिन्ता रोगीके स्वास्थ्य लाभकी रहती थी। एक-एक रोगीके लिए आप अपना सारा समय लगा देते थे। रोगीको लाभ हो, वह शीघ्र रोग मुक्त हो यह डा० कुप्पू स्वामीका पहला यत्न होता। इसी सेवाकी भावनाने आगे बढ़कर डा० कुप्पूस्वामीको स्वामी शिवानन्द सरस्वती बनाया, जो आज संसारमें अध्यात्म पथके पथिकोंके लिए एक महान् प्रकाश स्तम्भका कार्य कर रहे हैं।

डा० कुप्पूस्वामी अत्यन्त महत्वाकांक्षीका व्यक्ति थे। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर महत्वाकांक्षाका होना आवश्यक है। उसके बिना संसारमें न तो वह बढ़ सकता है और न कुछ कर ही सकता है। सन्तोष बहुत

बड़ी चीज है। शास्त्रोंमें सर्वत्र सन्तोषवृत्तिकी प्रशंसा की गयी है। सन्तोषियोंको ही सुखी कहा जाता है। निःसन्देह, जिसमें असन्तोषकी मात्रा होती है वह शान्ति लाभ नहीं कर सकता, और जिसका मन अशान्त है, चंचल और विक्षिप्त है उसको दुनियाकी कोई भी चीज सुखी नहीं बना सकती। परन्तु सन्तोषका यह मतलब नहीं कि हम जहाँ हैं वहीं सन्तोष कर चुपचाप पड़े रहें। इससे तो फिर हम किसी प्रकारकी भी उन्नति नहीं कर सकते। मान लीजिये कोई व्यक्ति साधारणतया शिक्षा पा सकता है। अब अगर वह सन्तोष कर बैठ जाय तो वह जहाँका तहाँ ही रह जायगा और कालान्तरमें आगे ज्ञान प्राप्त करनेकी उसकी आकांक्षा लुप्त हो जायगी। किन्तु यदि उसके अन्दर महत्वाकांक्षा है, अधिकसे अधिक ज्ञान प्राप्त करनेकी अभिलाषा है तो वह अवश्य उद्योगशील होगा और अपने परिश्रमसे अपने लक्ष्यको प्राप्त कर लेगा। यही अपेक्षित भी है। सन्तोषका अभिप्राय यही है कि हमारी जो अवस्था हो उसके प्रति सन्तोषका भाव रख कर हमें अपने लक्ष्यतक पहुंचनेके लिए सचाई और ईमानदारीसे प्रयत्न करना चाहिए। इस दृष्टिसे देखनेपर महत्वाकांक्षा होना प्रत्येक व्यक्तिमें जरूरी है।

ऊपर कहा जा चुका है कि डा० कुप्पूस्वामी अत्यन्त महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे। उनके अन्दर एक बहुत बड़ा डाक्टर बननेकी उत्कट अभिलाषा थी। इसके लिए वह उपयुक्त क्षेत्रकी खोजमें थे। संयोग

वश उनके ध्यानमें मलाया और सिंगापुर जानेकी बात आयी। डा० कुप्पू स्वामी अपनी लगन और धुनके बड़े पक्के थे। कोई बात अगर उनके दिमागमें आ गयी और उन्होंने उसे अच्छी तरह सोच समझ लिया तो वह उसका पालन अवश्य करते थे। उनके निश्चयोंसे उनको विरत करनेकी क्षमता किसीमें नहीं थी। एक बार जब उन्होंने भली-भांति विचार कर देख लिया कि उनकी वृद्धि और विकास मलाया एवं सिंगापुरमें अच्छी तरह हो सकता है तो वहां जानेका उन्होंने निश्चय कर लिया। डाक्टरके इस विचारको इस बातसे भी प्रेरणा मिली कि जो लोग अपने घरसे दूर इन प्रदेशोंकी ओर चले गये थे सबने ही उन्नति की थी। अतएव यह स्वाभाविक था कि महत्वाकांक्षी हमारे डाक्टर कुप्पू स्वामी भी इस पथका अनुसरण करते।

अपने इस निश्चयके अनुसार ही डाक्टर कुप्पू स्वामीने १९१३में मलायाके लिये प्रस्थान कर दिया। नेग्री सेम्बिलानमें आप लगभग सात वर्षतक एक सुप्रसिद्ध अस्पतालमें प्रधान चिकित्सकका कार्य करते रहे। यहां रह कर डा० कुप्पूस्वामीने अणुवीक्षण यन्त्रकी सहायतासे समद्र और जाने जाने वाले रोगोंके सम्बन्धमें अधिक ज्ञान प्राप्त किया। यही नहीं उष्ण कटिबन्धमें होने वाले रोगोंका आपने विशेष रूपसे अध्ययन किया और उनकी चिकित्सामें विशेष दक्षता प्राप्त की। नेग्री सेम्बिलानमें लगभग सात वर्ष रहनेके बाद आप जोहोर बाहरु चले गये। यहां डाक्टर पार्सन और ग्रीनके साथ आपने प्रायः तीन वर्षतक

काम किया। डाक्टर कुप्पूस्वामीकी योग्यता, कुशलता, निपुणता और दक्षतासे वे डाक्टर-द्वय बहुत कायल थे। इन लोगोंने डाक्टर कुप्पूस्वामीके कार्यके प्रति अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की और इनकी प्रशंसा की। करते भी क्यों न? अपने प्रेमपूर्ण मधुर व्यवहारोंसे ही डाक्टर कुप्पूस्वामी कितने रोगियोंको अच्छा कर देते थे। कितने रोगी, जिनको बड़े बड़े डाक्टरोंने जवाब दे दिया था, जिनके रोगोंको असाध्य करार दिया था, डाक्टर कुप्पूस्वामीके हाथका स्पर्श होते ही जादूकी तरह अच्छे हो जाते थे। डाक्टरकी मीठी-मीठी बातें, प्रेमपूर्ण व्यवहार, सेवा, शुश्रूषा, रोगियोंकी स्वयं देखभाल—ऐसी बातें थीं जो रोगियोंके मनसे चिन्ता और विकलताको दूर कर उनमें मनोबलका सचार करती थीं। वे सोचते कि हम अवश्य अच्छे हो जायगे और मनकी यह भावना ही उनको अच्छा कर देती थी।

आदमीके अन्दर यदि मनोबल हो तो वह क्या नहीं कर सकता? जिसका मन अचचल और शक्ति समन्वित होता है उसके लिए संसारमें कुछ भी कठिन नहीं। कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे वह न प्राप्त कर सके। ठीक यही अवस्था उन रोगियोंकी होती थी जो डा॰ कुप्पूस्वामीके पास चिकित्सा करानेके लिए जाते थे। डा॰ कुप्पूस्वामीके अन्दर आत्मविश्वास था। वह समझते थे कि जिस रोगीको हम अपने हाथमें लेंगे उसकी यथोचित चिकित्सा और सेवा कर उसे अवश्य अच्छा कर देंगे। परिणाम यह होता था कि डा॰ रोगीको अपने

हाथमें लेनेके बाद उसकी चिकित्सामें पूरी तल्लीनताके साथ जुट जाया करते थे। रोगी भी समझता था कि डाक्टरके इतने परिश्रम एवं देखभालसे हम अवश्य ही अच्छे हो जायंगे और यही चीज थी जो उसे देखते-देखते भला-चंगा बना देती थी। चिकित्सककी हैसियतसे डा० कुप्पू स्वामीने जो सफलता प्राप्त की उसके भीतर यही रहस्य छिपा हुआ है।

डा० कुप्पू स्वामी संसारमें रहते थे, सांसारिक प्राणीके सदृश थे फिर भी उनके भीतर सांसारिकता न थी। आजकल देखनेमें आता है कि लोग थोड़ेसे स्वार्थके लिए दूसरोंकी तनिक भी परवाह नहीं करते। आजकी अर्थ प्रधान दुनियामें आपको भर्तृहरिके 'एके सत्पुरुषाः परार्थ घटकाः स्वार्थान् परित्यज्य ये' कहीं-कहीं ही मिलेंगे। व्यवसायी—चाहे वह छोटा, बड़ा या किसी प्रकारका भी क्यों हो न—धन प्राप्त करनेके लिए सब कुछ कर सकता है। श्रमजीवी, जिसे आजकल नौकरी पेशा कहते हैं, अपने मालिकको प्रसन्न करनेके लिए सभी प्रकारके कृत्य कर सकता है। वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंका गला तक घोंटनेमें नहीं हिचकता। छल, कपट, द्वेष, पाप, पाखण्ड सर्वत्र इन्हींका राज्य है। आज संसारका वातावरण ही इस प्रकार गन्दा और कलुषित हो गया है। किन्तु इतना सब होते हुए भी आपको ऐसे महात्मा मिलेंगे, जो इन सबसे ऊपर रहकर हर तरहके स्वार्थका परित्याग कर संसारकी सेवा और भलाईमें लगे हुए हैं। संसारके

प्राणियोंकी सेवा और सहायता छोड़कर उनके अन्दर न कोई भाव है और न उनके पास कोई अन्य कार्य है। उनके पास 'स्व' नामकी कोई भी वस्तु नहीं है; जो कुछ भी है वह भगवानका है। और ऐसा ही सोच कर वे सबको प्रभुवत् मानकर उनकी सेवामें दत्तचित्त रहते हैं। ऐसे ही लोगोंके कारण यह दुनिया टिकी हुई है। दुनियामें धर्म-कर्मकी रक्षा ऐसे ही लोगोंसे होती है।

डा० कुप्पू स्वामीके भीतर भी ये भाव कार्य कर रहे थे। प्राणिमात्रकी सेवा उनका धर्म था, जो भी सामने आ जाय उसकी सहायता उनका कर्तव्य था एवं सबके प्रति सच्चे प्रेम तथा सहानुभूतिके भावका प्रदर्शन कर उसके कष्ट क्षणमात्रमें हर लेना उनकी निष्ठा थी। भगवानने उनके अन्दर चिकित्सक बननेकी प्रेरणा देकर उनको सेवाका मर्म सिखाया और सेवा-भावको अग्रसर होनेमें सहायता दी।

प्राय देखा जाता है कि बड़े-बड़े अफसर अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंके प्रति रूखा और शुष्कभाव रखते हैं, यही कारण है कि वे उनकी श्रद्धाके पात्र नहीं बन पाते। ऐसे लोगोंके प्रति उनके सहकारियों अथवा सेवकोंके अन्दर किसी प्रकारकी सहानुभूतिके भावका उत्पन्न होना अस्वाभाविक है। परिणाम यह होता है कि अवसर आनेपर उनके अधीन रहकर काम करने वाले लोग उनके प्रति सहानुभूति और समवेदना प्रकट करनेके स्थान पर उनसे बदला लेनेकी मनोवृत्ति प्रकट

करते हैं और घात लगने पर चूकते भी नहीं। किन्तु डा० कुप्पू स्वामी जिस जगह, जिस पदपर भी रहे आपको अपने प्रेमपूर्ण मधुर व्यवहारोंके कारण अपने अधीनस्थ सभी कर्मचारियोंको प्रसन्न रखने-का श्रेय प्राप्त रहा। आपके अफसर और आपके मातहत किसीको आपसे कभी कोई शिकायत नहीं रही। बहुत बार ऐसा होता था कि अस्पतालोंके बड़े बड़े सिविल सर्जन या डाक्टरोंके शुष्क एवं असौम्य व्यवहारोंके कारण छोटे छोटे कर्मचारियोंको काम छोड़ देना पड़ता था। पर वहां डाक्टर कुप्पू स्वामी कार्य करते थे अतएव यह कैसे हो सकता था कि मामला जैसेका तैसा रह जाय। अपने शिष्ट और सुव्यवहारसे वह उन कर्मचारियोंको भी प्रसन्न कर पकड़ लाते थे और बड़े अफसरों को भी समझा कर ठीक कर लिया करते थे।

ऊपर कहा जा चुका है कि डाक्टर कुप्पू स्वामी भारतमें रहते समय एक पत्रिकाका तीन वर्ष तक सम्पादन करते रहे। उन दिनों ही उनके अन्दर एक विशिष्ट पत्रकारके सभी गुण वर्तमान थे। मलायामें रहते समय डाक्टर 'मलाया ट्रिब्यून' आदि कई पत्र मगाते तो रहे परन्तु संसारकी प्रतिदिनकी घटनाओं अथवा राजनीतिके प्रति उनकी कभी, दिलचस्पी न रही, और न अभी है। इन पत्रोंको मगाने-का एक मात्र उद्देश्य यह था कि जो लोग समाचार जाननेके प्रेमी हों, किन्तु साधन हीन होनेके कारण समाचार पत्रोंके मगानेमें असमर्थ हों वे उनसे लाभ उठायें।

पर हाँ, इससे एक लाभ यह हुआ कि डा० कुप्पू स्वामीकी पत्रकार कलाका विकास भली भाँति हुआ। अखबारोंको देखते देखते क्रिकेट, फुटबाल आदि विविध खेलोंके प्रति आप कुछ आकृष्ट हुए। क्रमशः मलाया ट्रिब्यूनमें इनपर आप लेख लिखने लगे। यद्यपि आप कभी इन खेलोंको देखने न गये और न इनके सम्बन्धमें आपकी अधिक जानकारी ही थी तथापि आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभाने इस कार्यमें आपकी सहायता की और इन खेलोंके सम्बन्धमें आप अच्छे-अच्छे लेख लिखने लगे। पीछे आपने इस विषयका, पुस्तकों द्वारा तथा प्रत्यक्ष खेल देखकर, अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और नियमित रूपसे मलाया ट्रिब्यून आदि पत्रोंके खेल तमाशा विभागके संवाददाता और सम्पादक हो गये।

पट्टामदाई ग्रामके रहने वाले डा० कुप्पू स्वामीके अन्दर संगीत प्रेमका न होना एक अस्वाभाविक बात थी। आप शुरूसे ही बहुत अच्छा और मधुर गायन करते थे। किन्तु आपके गानेमें एक विशेषता यह थी कि आप भगवानके भजन और विनयके पद ही अधिकतर गाते थे। आगे चलकर जैसे-जैसे आपका ज्ञान अवस्थाके साथ बढ़ता गया आपने भक्तोंकी कथाओंको पढ़ा और दिन रात उन्हींकी तरह मस्तीमें झूमने लगे। फल यह हुआ कि आप भी उन्हींकी तरह भगवानका नाम-कीर्तन करने लगे।

इस कीर्तन-कार्यमें आगे चलकर आपको एक कमी खटकने लगी। आप सोचने लगे—"यदि मैं कोई बाजा बजाकर भगवानके भजन

गाऊं अथवा भगवन्नाम कीर्त्तन करूं तो मेरे अन्दर अधिक तल्लीनता आ सकती है। इस विचारसे प्रेरित होकर आपने हारमोनियम सीखनेका निश्चय किया। इसके लिए आपने एक हारमोनियम शिक्षक नियुक्त किया। इस हारमोनियम शिक्षकको डा० कुप्पू स्वामीने अपने साथ ही रखा। आपने उसको भोजन, आश्रय तथा सभी प्रकारके आरामके साधन दिये। गुरुवत् था। उसका आदर भी करते थे। कुशाग्रबुद्धि डा० कुप्पू स्वामीने एक महीनेसे भी कम समयमें हारमोनियम बजानेमें कुशलता प्राप्त कर ली। और इसके बाद आपने अपने संगीत गुरुको विदा करते समय इस थोड़ी सी अवधिके लिए ही गुरु दक्षिणामें लगभग ४००) रुपये दिये। वह संगीतज्ञ अवाक् रह गया। उसको स्वप्नमें भी आशा न थी कि थोड़ी थोड़ी देर तक बीस पचीस दिन हारमोनियम सिखानेके लिए उसको इतनी अधिक फीस मिलेगी। उसके लिये यह आश्चर्य चकित करने वाली बात थी पर डा० कुप्पू स्वामीके लिये यह साधारण सी बात थी।

बहुत बरसों बाद उस संगीतज्ञके बड़े भाईको पता चला कि डाक्टर कुप्पू स्वामीका ही विकास आनन्द कुटीरके सन्तमें हुआ है। वह दर्शनार्थ आया। उसने स्वामीजी के चरणोंमें सिर नवाकर गद्गद होकर कहा कि महाराज मेरा छोटा भाई अब इस संसारमें न रहा। जब तक वह जीवित रहा सदा आपकी उदारता और मृदुलताकी प्रशंसा करता रहा। उसकी मृत्युके समय हम सभी लोग उसकी

शय्याके समीप थे किन्तु उनने हमें कभी याद तक न किया। उनके मुहसे सदा आपका नाम निकलता रहा ; आपका ही नाम लेते-लेते वह मर भी।

इसी प्रकारसे जीवन दस वर्षसे कुछ ऊपर डा० कुप्पू स्वामीने मलाया और सिंगापुरमें बिताये। डाक्टरकी उदारता, हृदयकी विशालता और परदुःख कातरतासे सम्बन्ध रखने वाली एक और घटनाका उल्लेख कर हम इस प्रकरणको समाप्त करते हैं।

एक बार एक आदमी डा० कुप्पू स्वामीके मकानमें घुसा। डाक्टरको नमस्कार कर उसने हाथ जोड़कर कहा, "महाराज मैं इस समय बहुत बड़ी विपत्तिमें पड़ गया हूं। इस समय ५००) रुपये न मिलनेसे मेरी इज्जत नष्ट हो जायगी। मैं आपको छोड़कर किसके पास जाऊं। मुझे कोई भी अपना सहायक और शुभचिन्तक नहीं दिखायी देता।" सुनते ही डाक्टर घरमें घुसे। सोचा कि इसको बैंकका एक चेक काटकर दे दूं, इसका काम चल जायगा। किन्तु पास बुकमें देखने पर मालूम हुआ कि रुपये उसकी आवश्यकता भर नहीं हैं। डाक्टर कुछ क्षण हतबुद्धिसे खड़े रहे। तुरन्त ही, उनका चेहरा खिल उठा। उन्होंने एक बहुमूल्य पदार्थ ले लिया। बाहर आकर उस आर्त्तजनसे कहा—'मेरे भाई! थोड़ा ठहरो, मैं अभी आता हूं।" थोड़ी ही देरमें उक्त चीजको बन्धक रखकर डाक्टरने रुपये प्राप्त कर लिये और लाकर उस सज्जनको प्रसन्नता पूर्वक दे दिये।

डाक्टरकी उदारता और सहृदयताका यह एक उदाहरण पाठकोंके सामने रखा गया है। ऐसे सैकड़ों लोगोंकी सहायता वहां रह कर आपने की। जो भी आपके सम्पर्कमें आया आपका हो गया। ऐसे मृदुल व्यवहार वाले, साधु, परोपकारी व्यक्तिके सम्पर्कमें आकर कौन उनको अपना न समझेगा? भला, ऐसे कितने सज्जन आपको इस स्वार्थी संसारमें मिलेंगे? चरित्रका यही आदर्श और त्यागकी यही भावना है जो मनुष्यको महान् बना देती है।

४

ज्ञानका उदय और त्याग

अर्जुनको योग और योगियोंके सम्बन्धमें अनेक बातें बतलाते हुए भगवानने कहा है —

प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानुषित्वाशाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतांगेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥
अथवा योगिनामेवकुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरंलोके जन्मयदीदृशम्॥

—अर्थात्, योगभ्रष्ट लोग अपनी साधनाके फलस्वरूप स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त तो कर लेते हैं और वहां रहकर बहुत काल तक वहांके सुखादिका उपभोग भी करते हैं, किन्तु नियत अवधि बीतनेपर वे पुनः श्री-सम्पन्न और पुण्यात्माओंके यहां जन्म लेते हैं, अथवा ऐसे लोग सन्तों और योगियोंके घर जन्म लेते हैं, परन्तु इस प्रकारके जन्मकी प्राप्ति इस संसारमें कठिनाईसे ही होती है।

तात्पर्य यह है कि योगभ्रष्टोंका जन्म अधिकतर श्रीमन्तोंके यहां ही होता है। जिनकी साधना अत्यन्त उच्च कोटिकी होती है, उनका ही परम्परा गत योगियोंके घरमें जन्म होता है। इसका कारण यह है कि साधारण साधना वाले व्यक्तिके लिए उस पूर्णताको प्राप्त करनेके अर्थ अधिक समय लगानेकी जरूरत होती है। उसके लिए अधिक यौगिक साधनाएं अपेक्षित हैं। किन्तु, अपनी अल्प साधनाका ही सही, फल तो उन्हें मिलना चाहिए। इसलिए उनका जन्म श्रीमानोंके कुलमें होता है। मगर जो इस पथपर काफी अधिक बढ़ गये रहते हैं, जिनकी साधनामें थोड़ी ही कमी रहती है उनका जन्म योगियोंके कुलमें होना आवश्यक है, जिसमें उन्हें अपनी थोड़ीसी कमीको पूरा करनेके लिए सुविधाजनक रूपमें अवसर मिले। ऐसा न होनेसे "अनेक जन्म ससिद्धिस्ततोयाति परांगतिम्" की सिद्धि किस प्रकार हो सकती है।

संस्कृतका एक श्लोक है जिसका आशय है—मनुष्य इस जन्ममें जो कुछ भला बुरा करता है उससे इस बातका आभास मिलता है कि पूर्व जन्ममें भी वह इसी प्रकारके आचरण कम या अधिक करता रहा होगा। उन आचरणोंकी प्रतिच्छाया इस जन्ममें पड़ती है तभी मनुष्यमें लड़कपनसे ही उस प्रकारकी बुद्धि हम पाते हैं। साथही संयोजक घटनाएं इस तरह घटती जाती हैं, जो उसको उसी प्रकारके कार्योंकी ओर प्रेरित करती रहती हैं।

ऊपर दिये हुए इस कथन पर यदि हम विचार करें तो देखेंगे कि डा० कुप्पू स्वामी पूर्वजन्ममें भी एक महान् योगी रहे होंगे जिनकी साधनामें थोड़ी बहुत कमी रह गयी थी। अतएव उन्होंने अप्पय दीक्षितसे लेकर अबतक योगियोंकी जो जबर्दस्त कुल परम्परा चली आती थी उसमें जन्म ग्रहण किया। यह प्रसिद्ध ही है कि अप्पय दीक्षित भगवान शिवके अंशावतार थे और कुप्पू स्वामीके पिता स्वयं भी एक बहुत बड़े शिवभक्त, ज्ञानी और साधु पुरुष थे। इसलिए यह निश्चय है कि योगियों और भक्तोंके इस कुलमें कुप्पू स्वामी जैसे महापुरुषका जन्म हो। देश, काल एवं कुलकी इन पारिवारिक अवस्थाओं ने ही अनेक जन्मोंसे योगके पथपर बढ़ते हुए इस महान् आत्माको वह रूप प्रदान किया, जो आज हम ऋषिकेशके सन्त योगिराज शिवानन्दमें देखते हैं।

एक तो कुप्पू स्वामीको योग और ज्ञानकी पैतृक सम्पत्ति मिली, दूसरे पट्टामडाईकी संगीतज्ञताने बालक कुप्पू स्वामीके अन्दर भक्ति और प्रेमके बीज पल्लवित किये। लड़कपनसे ही कुप्पू स्वामीके अन्दर भगवान्के भजन और विनयके पद गानेकी इच्छा रहती थी। जैसे-जैसे अवस्था बढ़ती गयी कुप्पूस्वामीकी भावुकतामें भी वृद्धि होती गयी। आगे चलकर आप भजन गाते समय भगवानके इस भजनमें ही लीन हो जाया करते। पीछे तो यह अवस्था हो गयी कि आपको भगवन्नाम कीर्त्तन और विनयके पदोंके अतिरिक्त दूसरा कुछ गाना न

अच्छा ही लगता और न उसमें कोई आनन्द ही प्राप्त होता। और ठीक भी है, जिसको अक्षय सुखकी झलक एक बार मिल गयी वह संसारके नश्वर सुखको किस प्रकार आनन्ददायक समझ सकता है। और फिर संसारमें सुख नामकी चीज है भी तो नहीं। सुख या आनन्दकी अवस्था तभी कही जा सकती है जब प्राणी सब प्रकारकी चिन्ताओं और आपदाओंसे मुक्त हो। क्या आप संसारके समस्त साधन प्राप्त, विपुल ऐश्वर्यके अधीश्वर किसी ऐसी प्राणीको बतला सकते हैं जो सब प्रकारकी चिन्ताओं, आपदाओं और परेशानियोंसे मुक्त हो? फिर संसारमें सुख और आनन्द कहां?

भगवानके भजन और विनयके पदोंको गानेसे कुप्पू स्वामीके अन्दर भक्ति-भावना बलवती होती गयी। साथ ही, युवक कुप्पूस्वामी-तथा डा० कुप्पूस्वामीके अन्दर सेवाका तथा प्राणीमात्रको सुखी देखनेका जो भाव क्रमश बढ़ता गया उसने उनके अन्दर विश्वके प्रत्येक प्राणीको चराचरके स्वामीकी भिन्न-भिन्न मूर्तियां समझने तथा तद्वत् आचरण करनेका भाव उत्पन्न कर दिया। यही कारण है कि डा० कुप्पू स्वामीके भीतर सभी लोगोंकी सेवा और सहायताके प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया। आप यह कार्य अपना धर्म और कर्त्तव्य समझकर करने लगे।

व्याधने जाजलिको धर्मका उपदेश देते हुए कहा है— 'हे जाजलि! जो व्यक्ति प्राणीमात्रके हितकी कामना करता है तथा उनका हित करनेका

अविश्वास नहीं करते तो कमसे कम पूजा, पाठ, जप, तप, नाम संकीर्तन आदिके प्रति उनके अन्दर एक प्रकारसे विरक्ति और घृणाके भाव अवश्य रहते हैं। पश्चिमकी इस हवाने जब भारत तकमें इस प्रकारके मनोभावकी सृष्टि कर दी है तो उन देशोंका क्या कहना जहां इसीकी प्रधानता हो। यही कारण है कि डा० कुप्पूस्वामीके सहयोगी और साथी यथासम्भव इनसे दूर ही रहना चाहते। वहां तो वे आधुनिक सभ्यताके पक्षपाती और इन्हींको जीवनकी तथा मानवके विकासकी सबसे ऊंची सीढ़ी समझने वाले और यहां डा० कुप्पूस्वामी जो इस वस्तुको निस्सार और पथभ्रष्ट बनाने वाला समझते। डा० कुप्पूस्वामीने वेदान्तके अध्ययनसे यह अनुभव कर लिया था कि ये चीजें मनुष्यको फंसाकर बीचहीमें नष्ट कर देती हैं। वह अपने अन्तिम लक्ष्यको भूल जाता है। इसलिए दोनों विरोधी विचारोंवाले लोगोंके अन्दर मेल न हो सकता था।

अविश्वास नहीं करते तो कमसे कम पूजा, पाठ, जप, तप, नाम सङ्कीर्तन आदिके प्रति उनके अन्दर एक प्रकारसे विरक्ति और घृणाके भाव अवश्य रहते हैं। पश्चिमकी इस हवाने जब भारत तकमें इस प्रकारके मनोभावकी सृष्टि कर दी है तो उन देशोंका क्या कहना जहां इसीकी प्रधानता हो। यही कारण है कि डा० कुप्पूस्वामीके सहयोगी और साथी यथासम्भव इनसे दूर ही रहना चाहते। कहां तो वे आधुनिक सभ्यताके पक्षपाती और उसीको जीवनकी तथा मानवके विकासकी सबसे ऊंची सीढ़ी समझने वाले और कहां डा० कुप्पूस्वामी जो इस वस्तुको निस्सार और पथभ्रष्ट बनाने वाला समझते। डा० कुप्पूस्वामीने वेदान्तके अध्ययनसे यह अनुभव कर लिया था कि ये चीजें मनुष्यको फसाकर बीचहीमें नष्ट कर देती हैं। वह अपने अन्तिम लक्ष्यको भूल जाता है। इसलिए दोनों विरोधी विचारोंवाले लोगोंके अन्दर मेल न खा सकता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने सहयोगी, साथी और मित्र डा० कुप्पूस्वामीके प्रति सब प्रकारकी श्रद्धा, स्नेह और आदरके भाव रखते हुए भी वहांके सरकारी कर्मचारी अथवा उन्हींके विचारोंके नागरिक इनसे खिंचे रहते। अपने यहां विशेष उत्सवोंका आयोजन होनेपर वे कभी-कभी डाक्टरको निमन्त्रित भी न करते। इसलिए नहीं कि उनके अन्दर कोई उपेक्षाका भाव था, वरन् इसलिए कि डा० कुप्पूस्वामी अपने दलबलके साथ जाकर भगवन्नाम कीर्तनादि करने लगते

अविश्वास नहीं करते तो कमसे कम पूजा, पाठ, जप, तप, नाम संकीर्तन आदिके प्रति उनके अन्दर एक प्रकारसे विरक्ति और घृणाके भाव अवश्य रहते हैं। पश्चिमकी इस हवाने जब भारत तकमें इस प्रकारके मनोभावकी सृष्टि कर दी है तो उन देशोंका क्या कहना जहां इसीकी प्रधानता हो। यही कारण है कि डा० कुप्पूस्वामीके सहयोगी और साथी यथासम्भव इनसे दूर ही रहना चाहते। कहां तो वे आधुनिक सभ्यताके पक्षपाती और उसीको जीवनकी तथा मानवके विकासकी सबसे ऊंची सीढ़ी समझने वाले और कहां डा० कुप्पूस्वामी जो इस वस्तुको निस्सार और पथभ्रष्ट बनाने वाला समझते। डा० कुप्पूस्वामीने वेदान्तके अध्ययनसे यह अनुभव कर लिया था कि ये चीजें मनुष्यको फसाकर बीचहीमें नष्ट कर देती हैं। वह अपने अन्तिम लक्ष्यको भूल जाता है। इसलिए दोनों विरोधी विचारोंवाले लोगोंके अन्दर मेल न खा सकता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने सहयोगी, साथी और मित्र डा० कुप्पूस्वामीके प्रति सब प्रकारकी श्रद्धा, स्नेह और आदरके भाव रखते हुए भी वहांके सरकारी कर्मचारी अथवा उन्हींके विचारोंके नागरिक इनसे खिंचे रहते। अपने यहां विशेष उत्सवोंका आयोजन होनेपर वे कभी-कभी डाक्टरको निमन्त्रित भी न करते। इसलिए नहीं कि उनके अन्दर कोई उपेक्षाका भाव था, वरन् इसलिए कि डा० कुप्पूस्वामी अपने दलबलके साथ जाकर भगवन्नाम कीर्त्तनादि करने लगते

और इससे उनके राग-रंगमें विघ्न पड़ता। यदि कभी कोई मित्र इसी कारण आपको निमन्त्रित न करता तो भी आप उनके यहां पहुंच जाते और यह कहकर कि—"मैं जानता हूं कार्याधिक्यसे मेरा नाम छूट गया होगा, फिर भी कोई बात नहीं मैं तो आपका ही हूं। किसी प्रकारके सोच फिक्रकी जरूरत नहीं", आप अपनी दुकान खोल देते।

आपके अन्दर कभी यह विचार ही न उठे कि मेरा निमन्त्रित न होना मेरे लिये अपमानकी बात है अतः मुझे इस व्यक्तिके यहां कदापि न जाना चाहिए। इस प्रकारके संकीर्ण विचार आपको स्पर्श तक न करते थे। आपके उन्नत, विकसित और उदार मनमें इस प्रकारके छोटे विचार उठ ही नहीं सकते थे। सदा सत्य बोलनेवालेको संसारमें झूठ बोलने वाले और जाल, फरेब करने वाले नहीं दिखायी देते।

डा० कुप्पूस्वामीका जीवन इसी प्रकार बीत रहा था कि १९२३ में सहसा उनके अन्दर आत्मज्ञान-सा हुआ। छः वर्षों तक कठिन तपस्या करनेके बाद भी गौतमको जो वस्तु न मिली थी वह वट वृक्षके नीचे ध्यानस्थ बैठे रहनेपर एकाएक प्राप्त हो गयी। उससे ही गौतमको ज्ञान प्राप्त हुआ और वे गौतमसे 'बुद्ध' हो गये। ठीक इसी प्रकार डा० कुप्पूस्वामीके अन्दर भी १९२३ में एकाएक आत्म चेतना प्रकट हुई। वे अपने अन्दर कुछ खोजने लगे। सदाकी भांति समाजकी सभी चीजोंको वे देखते, पर उनको न सन्तोष होता न तृप्ति

होती। इन सारी चीजोंसे उनका मन उचट गया। उनको इनमें कोई तथ्य नहीं दिखायी देता। ससारके सभी पदार्थ उनको सारहीन और क्षणिक दिखायी देते। इनसे उसको विरक्ति हो गयी। अपनी कही जानेवाली चीजें उनको दूसरोंकी लगने लगीं। उनके प्रति न उनके अन्दर कोई आकर्षण रहा न मोह। उन सभी चीजोंको आपने लोगोंमें बाँट दिया। इसलिए कि जिस चीजको वे अपनी कह सकते थे उसका अनुभव उनको अब हो चुका था और वे उसीको प्राप्त करना चाहते थे। इसलिए बाधक पदार्थोंको मार्गमेंसे हटाना आवश्यक हो गया।

अवस्था ऐसी हो गयी कि डा० कुप्पूस्वामीको ससारमें शिवके अतिरिक्त और कोई दूसरी चीज दिखायी ही न देती थी। जो भी चीज आपके सामने आयी आपको शिव मय दिखायी देने लगी। आप बहुत आह्लाद, प्रेम और भक्तिसे 'ॐ नमः शिवाय' की रट लगाने लगे। आप समझ न सके कि क्या करू और कहा जाऊ। पर आपको अपनी तात्कालिक अवस्थासे विरक्ति हो गयी। आत्मज्ञान प्राप्त करनेकी प्रचण्ड अभिलाषा आपके अन्दर जागरूक हो गयी थी, जिससे आपको किसी प्रकारकी शान्ति न मिलती थी।

आप अनेकत्वमें एकत्वका अनुभव करने लगे। प्रकृतिके अणु-अणुमें आपको वह एक ही चीज दिखायी देती। उसको प्राप्त करनेके लिए आपका मन बल्लियों उछलने लगा। आपके भीतर यह प्रेरणा होने लगी कि मायाभिभूत सांसारिक पदार्थोंसे हट कर कहीं दूर जाना

चाहिए अन्यथा उस परमानन्दकी प्राप्ति असम्भव है। रात-रात भर बैठ कर आप सोचते रहे कि यह सब क्या है, हमें वस्तुत क्या करना चाहिए, आगेके लिए हमारा मार्ग क्या होगा। पर आप बेचैन और विक्षिप्त ही रहे, कुछ निर्णय न कर सके।

डाक्टरके अनेक मित्रों और हितैषियोंने यह अवस्था देखी। डाक्टरके अन्दर होनेवाले इस आकस्मिक परिवर्त्तनसे उनको आश्चर्य तो हुआ ही, अपने मित्रकी विक्षिप्तावस्थाके कारण उनको दुःख भी कम न हुआ। दुःख-सुखके अपने सांसारिक मापदण्डसे मापकर उन्होंने डाक्टरके जीवनको दुःखमय पाया और इसीलिए अपने सारे स्नेह सम्बन्धको एकत्र कर डाक्टरको तरह तरहसे समझा कर अपने रास्तेपर लाना चाहा पर उनके सारे उद्योग व्यर्थ गये। डा० कुप्पू स्वामीके भीतर आत्म जिज्ञासाका जो भाव उत्पन्न हो गया था उसको मिटानेकी क्षमता उनमें न थी। अतः उनके प्रयत्न सफल होते ही किस प्रकार?

कुछ भी निश्चित न कर सकने पर डा० कुप्पूस्वामीने अपनी बचीखुची सारी चीजें लोगोंको लुटा दीं और सिंगापुरसे मलायाके लिए प्रस्थान कर दिया। गृहस्थीके थोड़ेसे सामान लेकर आप जहाजसे उतरे। उनको एक ठेलेपर लाद कर आप एक मित्रके घर गये। मित्र महाशय उस समय बाहर गये थे। गृहणी न तो बाहर आ सकती थी और न कुप्पूस्वामी अन्दर जा सकते थे। ठेले वालेसे सामान अन्दर

रखवा कर आपने बाहरसे ही गृहणीसे कहा, 'उनके आनेपर कह देना कि अमुक व्यक्ति थे, अपना सामान रख कर गये हैं।"

आप कुछ ही दूर गये होंगे कि पीछेसे मित्र महाशयकी चिर-परिचित आवाज सुनायी दी। आपको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आप रास्तेमें सोचते जाते थे कि कोई मिल जाय तो मित्रके नाम सन्देश छोड़ जाऊं। भगवानकी लीला! मित्र स्वयं आ पहुंचे।

मित्रसे मिलकर आपको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आपने उनको सारी बातें समझा कर कहा कि वह सारा सामान आप अपने पास रखें, जरूरत पड़नेपर मैं लिखूंगा। यह कहकर आप अविश्रान्त भावसे भगवानका नाम लेकर तथा भगवदिच्छापर भ्रमण करनेके लिए निकल पड़े।

आगे जैसा पाठक देखेंगे घोरसे घोर आवश्यकता पड़नेपर भी आपने मित्रको न लिखा।

५

साधना और परिव्राजक जीवन

मित्रसे मिलकर डा० कुप्पू स्वामीने अपना अन्तिम सांसारिक कृत्य समाप्त किया। संसारके जिन पदार्थों पर अबतक उनका कथित स्वामित्व था उनको मित्रके हवाले कर वे सर्वस्व त्यागी बन गये। अब उनके पास कोई ऐसी वस्तु न थी जिसे वे अपनी कह सकते। जिसको वे अपनी चीज समझते थे उसीकी खोजमें तो उन्होंने सर्वस्व-त्यागका बना लिया था। दो बातमें से एक ही हो सकती है। या तो ज्ञान चक्षुसे देखकर आदमी अपनी असली चीजको पहचाने और उसको प्राप्त करनेका उद्योग करे अथवा अन्धकारमें पड़ा रहे और इह-लौकिक वस्तुओंको ही भ्रमवश अपना समझे। डा० कुप्पू स्वामीके ज्ञानचक्षु खुल गये थे। उनको असल नकलका ज्ञान हो गया था। वे कैसे इस भ्रमात्मक अवस्थामें पड़ सकते थे। इसलिए संसारके मायावी पदार्थोंसे नाता तोड़ उन्होंने सर्वस्व-त्यागका बाना लिया। सब प्रकारसे

उन्होंने अपनेको भगवानके चरणोंमें निवेदित कर दिया। सारे बन्धनों-के मूल इस शरीरसे भी विरक्त हो गये। उसकी भी परवाह और चिन्ता छोड़ कर वे अपने त्याग-पथपर दिन दिन अग्रसर होने लगे।

मित्रसे विदा होते समय डा० कुप्पू स्वामीके पास कुछ रुपये थे। उनका उपयोग उन्होंने मद्राससे काशीके लिये टिकट लेनेमें किया। काशी आकर आपने भगवान विश्वनाथके दर्शन किये। इससे आपके मनको अनिर्वचनीय आनन्द एवं शान्तिका अनुभव हुआ।

पार्वतीने कहा था—"विश्वनाथ मम नाथ पुरारी। हरहु नाथ संकट मम भारी।" पार्वतीके उस संकटको, जो अविद्या और अज्ञान जनित था, शिवने मानसकी कथा सुनाकर दूर किया। जिसने भी सच्चे हृदयसे याचना की शिव उसकी सहायताको दौड़ पड़े। फिर, शान्तिके इच्छुक डा० कुप्पू स्वामी पर विश्वनाथकी कृपा क्यों न होती? डा० कुप्पू स्वामीको तो सर्वत्र ही शिव दिखायी दे रहे थे। आपने सभी कुछ शिवमय' अनुभव करना शुरू कर दिया था। अतएव अपने ऐसे भक्तको विश्वनाथ शान्ति न देते तो क्या करते? तुलसीदासकी तरह डा० कुप्पू स्वामीने भी विश्वनाथका दर्शन करने पर याचना की थी 'शंकरः शतनोतु मे', और वह शान्ति भी शंकरने दी। अब कमी ही क्या रही?

कुछ दिनों तक काशीमें रहकर डा० कुप्पू स्वामीने भगवान विश्वनाथके दर्शनोंका आनन्द प्राप्त किया। इसके बाद आप आगे बढ़े।

यदि किसीने टिकट कटा दिया तो ठीक, अन्यथा आपको उसकी भी परवाह न थी। आप केवल चलते जाते थे। आपने अपना जीवन गतिमय बना लिया था। गति ही तो जीवन है। फिर आपमें अगति स्थिरता कैसी? जहाँ जिस ओर इच्छा हुई आप मुड़ पड़े। शीत, वर्षा, आतप, वात किसीमें भी आपकी गतिको रोकनेकी सामर्थ्य न थी। झाड़-झङ्खाड़, सुविस्तृत राजपथ एवं कङ्कड़ीली काँटेदार टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियाँ सभीपर आपके पद अबाध गति और अविश्रान्तभावसे चलते रहते थे।

किन्तु क्या आपकी ये यात्राएं निरुद्देश्य थीं? क्या आपका इस प्रकार चलना निरर्थक था? कदापि नहीं; आपकी इन लम्बी-लम्बी यात्राओंके पीछे रहस्य छिपे हुए थे। आपकी इन यात्राओंने जहाँ आपमें कष्ट सहिष्णुताकी शक्ति उत्पन्न की वहाँ आपके भीतर शरीरके प्रति अनासक्तिका भाव भी उदय हुआ। शरीरके प्रति सारे मोह-मायासे आप मुक्त होने लगे। पुराने वस्त्रकी तरह बदल दिये जाने वाले शरीरकी चिन्ता ही आपको क्यों होती जब आपने समझ लिया कि इसका मूल्य कुछ भी नहीं है।

कष्ट सहिष्णुताकी शक्ति, जो योगियोंके लिए आवश्यक है, आपने अवश्य प्राप्त की पर इसके अतिरिक्त आपको और भी बहुत सारे लाभ इन यात्राओंसे हुए। इन यात्राओंमें ही आपको प्रकृतिके सूक्ष्म अध्ययन-का, उस नटनागरकी रचना चातुरीका एव बड़े-बड़े साधु सन्तोंके दर्शन-

का अवसर मिला। यात्राओंका उद्देश्य तीर्थाटन और देव-दर्शन भी था। आपने इसी समय नासिक, पूना, पण्ढरपुर आदि अनेक तीर्थोंके दर्शन किये। पण्ढरपुरसे चलकर आप खेडगाव पहुचे। यहा आप दो दिन तक योगिराज नारायण महाराजजीके आश्रममें रहे। दो दिनके बाद आप यहांसे भी चल पड़े। आपका अगला मुकाम घालजमें हुआ।

घालज एक छोटा सा कस्बा है जो चन्द्रभागके किनारे बसा हुआ है। चन्द्रभाग छोटी-सी नदी है। पर्वतकी उपत्यकाओंमें होकर कल कल बहती है। स्वच्छ निर्मल जल तथा टेढ़ी-मेढ़ी चालसे चलने वाली चन्द्रभाग बरबस मनको आकृष्ट कर लेती है। ऐसी ही सुन्दर सरिताके किनारे घालजका छोटासा कस्बा बसा हुआ है। जो भी वहा जाता है उसकी इच्छा वहा कुछ समय तक रहनेकी हो जाती है।

डा० कुप्पू स्वामी चन्द्रभागके तटपर एक प्रस्तर शिलाखण्डपर आसीन होकर प्रकृतिका दृश्य देखने लगे। सायकालका समय था। सूर्य डूब चुका था। स्वच्छ निर्मल नभमें एक-एक तारे निकलते आ रहे थे। सर्वत्र शान्ति विराज रही थी। केवल सरिताकी कल कल ध्वनि आकाशमें अपना रव भर रही थी। मन्द-मन्द गतिसे हवा बह रही थी। डा० कुप्पू स्वामी यह दृश्य देखकर उसीमें लीन हो गये। घण्टों आप उसीकी सुन्दरताका अवलोकन करते रहे। एकाएक आपके

मनमें यह विचार उठा कि यदि इस मनोरम स्थानमें रहकर भगवानका ध्यान करनेका अवसर मिलता तो कितना अच्छा होता। लेकिन यह हो कैसे? मलाया आपके लिए बिल्कुल नयी जगह थी। आपको यहां महीनों बैठाकर खिलाता पिलाता कौन? इससे आपके मनमें कुछ चिन्ताका भाव आया तो अवश्य पर दूसरे ही क्षण आपने उसे निकाल बाहर किया। भगवानके चरणोंमें अपनेको न्यौछावर कर देनेवालेके लिए चिन्ता कैसी? क्या उन्होंने नहीं कहा है कि जो भक्त अनन्य भावसे मुझे भजता है उसके लिये मुझे सबसे अधिक चिन्ता होती है और मैं उसके लिये सभी प्रकारकी व्यवस्था करता हूं? * इसलिए डा० कुप्पू स्वामीने पुनः अपनेको प्रकृतिकी मधुरिमामें विलीन कर दिया।

परन्तु यह क्या? आश्चर्यचकित डाक्टरने पीछे फिरकर देखा तो उनके कन्धेपर स्नेह भरा हाथ रखने वाला व्यक्ति एक वृद्ध और सम्माननीय सज्जनकी तरह जान पड़ा। श्रद्धासे डाक्टरका मस्तक झुक गया। आपने बहुत ही नम्रता पूर्वक 'ॐ नमो नारायण' कहकर इन सज्जनका अभिवादन किया।

डाक्टरका अभिवादन स्वीकार कर उन सज्जनने पूछा, "मेरे भाई! आप इस एकान्त स्थानमें इतनी रात गये क्यों बैठे हैं? क्या आप यात्री तो नहीं हैं?"

---

* *अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।*
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

पहले तो एकाएक डाक्टरके मुँहसे निकल गया कि हाँ मैं यात्री हूं। पर पीछे सभल कर आपने दृढ़ता भरे स्वरमें कहा, "नहीं मैं यात्री नहीं हूँ। मैं प्रकृतिका पर्यवेक्षक हूँ। घूम घूमकर प्रकृतिकी सुन्दरताका अवलोकन करना ही मेरा काम है।"

डाक्टरके इस विचित्र किन्तु दृढ़ता भरे उत्तरको सुनकर तथा उनकी तेजस्वी आकृतिको देखकर वे सज्जन अत्यन्त प्रभावित हुए। वे समझ गये कि डाक्टरके अन्दर आत्म-चेतनताका विकास हो रहा है। आगे बिना कुछ अधिक प्रश्न किये वह डाक्टरको अपने घर ले गये। भोजनोपरान्त दोनों आदमियोंमें भगवानकी लीलाओं पर बहुत देर तक बात चीत होती रही।

वे वृद्ध सज्जन उस स्थानके पोस्टमास्टर थे। आप बहुत ही धर्मात्मा और भक्त पुरुष थे। जहां तक पता चलता है आपके और कोई न था। डाक्टरको देखकर उनकी भी इच्छा कुछ दिनों तक डाक्टरके साथ रहनेकी हुई। आपने डा॰ कुप्पू स्वामीसे अनुरोध किया कि आप कुछ दिन तक मेरे साथ रहें। डा॰ कुप्पू स्वामीने इसकी कल्पना भी न की थी। एकवार पुन भगवानके चरणोंके प्रति आपका मस्तक श्रद्धासे झुक गया। आपने उन सज्जनका अनुरोध स्वीकार कर लिया।

धालजमें डा॰ कुप्पू स्वामी चार महीने रहे। वहां रहकर आपने भगवन्नाम कीर्तन और साधनामें काफी समय लगाया। पोस्टमास्टरके

साथ सत्संग भी खूब होता था। दूसरोंकी सेवामें, जो लड़कपनसे ही आपमें कूट-कूटकर भरी हुई थी, आपका काफी समय लगता।

भोजन बनानेमें, कुएँ से पानी लानेमें तथा बीसियों प्रकारसे आपने पोस्टमास्टरकी सहायताकी सो तो की ही, वहांके पोस्टमैनको भी आप सदा आराम पहुंचानेका काम करते रहे। इसके अतिरिक्त उस कस्बेके बच्चे, बूढ़े, अधेड़, युवक, नारी, पुरुष सभी डाक्टरकी सेवाओं और सहायताके कारण उनके कृतज्ञ थे।

पोस्टमैनका काम कितना कठिन होता है, और सो भी देहातोंमें। बेचारा युवक्का सारा शामको कई मीलका चक्कर लगाकर जब लौटता है तो थककर चूर हो जाता है। उस समय उसमें किसी भी कार्यके सम्पादनकी न शक्ति रहती है न सामर्थ्य। डाक्टरने उसके मुसीबत भरे कामको ध्यान पूर्वक देखा था और उसकी तकलीफोंको अनुभव किया। अतः शामको जब वह लौटता तो आप हर प्रकारसे उसकी सेवा करते। कुएँ से ठण्डा पानी लाकर आप उसे हाथ पैर धोनेके लिए देते, खाने पीनेका सामान तैयार कर देते तथा अन्य प्रकारसे उसे सुख पहुंचानेका प्रयत्न करते। कभी-कभी जब वह अत्यन्त थक जाता तो आप उसके पैर भी दबाते। वह मना करता रहता पर आप न मानते। आप कहते, "मुझे अपना लड़का या छोटा भाई, चाहे जो भी समझ लो, पर अपनी सेवा करने दो। मैं तुमको इतने कष्टमें नहीं देख सकता।"

इस प्रकार धालजमें त्याग सेवा और साधनाका जीवन आपने चार मासतक बिताया। इसके बाद किसी शान्त और एकान्त स्थानमें रहकर तपस्या करनेकी आपकी इच्छा हुई। आपने पोस्टमास्टरके सामने अपने विचार प्रकट किये। उन सज्जन पुरुषने आपको ऋषिकेश जानेकी सलाह दी। जब आप चलने लगे तो उन्होंने आपको २५) मार्गव्ययके लिए दिये।

धालजसे डा० कुप्पूस्वामी सीधे ऋषिकेश आये। ऋषिकेशकी प्राकृतिक छटा आपके प्रकृतिप्रेमी हृदयको आकृष्ट करनेके लिए काफी थी। इसी स्थानमें रहकर आपने अपनी यौगिक साधना प्रारम्भ की।

ऋषिकेश आनेके कुछ ही दिन बाद १९२४ के मध्यमें एक दिन सदाकी भाँति जब आप गंगास्नानके लिए गये तो आपने एक परम तेजस्वी सन्यासीको देखा। उस समय आप गंगातट पर खड़े-खड़े अपने चारों ओरके सुन्दर दृश्य देख रहे थे। उसी समय यह सन्यासी एक ओरसे आ निकले। उन तेजस्वी, ज्योतिर्मय सन्यासीको देखते ही डा० कुप्पूस्वामीके अन्दर भी सन्यासाश्रममें दीक्षित होनेकी प्रेरणा हुई।

इसी समय उन तेजस्वी महात्माने डा० कुप्पूस्वामीसे कहा, "वत्स! तुम्हें देखकर हमें ऐसा लक्षित होता है कि संसारमें किसी विशेष कार्यके सम्पादनके लिए तुम्हारा अवतार हुआ है। मेरी इच्छा है कि तुम्हें सन्यासाश्रममें दीक्षित करूं। तुम्हारा स्थान कहां है।"

प्रभुकी लीला ! डाक्टर आश्चर्यचकित रह गये। अभी उनके मनमें संन्यासी बननेकी इच्छा उत्पन्न हुई थी और तुरन्त ही उन महात्माने दीक्षित करनेकी बात कही। डाक्टरने उत्तर दिया, "पूज्य महात्मन् ! यह मेरा परम सौभाग्य है जो आप मुझे दीक्षित करना चाहते हैं।"

डाक्टरकी बात सुनकर उन महात्माने कहा-"मेरा भी धन्य भाग्य जो तुम्हारे जैसा शिष्य मिला। यद्यपि मैं तुमको नहीं जानता तथापि मेरी अन्तरात्मासे यह ध्वनि निकलती है कि तुमसे बढ़कर योग्य व्यक्ति मुझे दीक्षित करनेके लिए न मिल सकेगा। इसलिए मैं तुम्हें संन्यास-धर्ममें अवश्य ही दीक्षित करूँगा। मुझे लोग स्वामी विश्वानन्द कहते हैं। मैं काशीमें रहता हूं। मैं शृंगेरी मठकी शाखाका परमहंस संन्यासी हूं।"

डाक्टरकी प्रसन्नताकी कोई सीमा न रही। आप अपनेको कृतार्थ समझने लगे।

इसके बाद आपका दीक्षा समारोह सम्पन्न हुआ। गृहस्थके वस्त्रोंको त्यागकर आपने संन्यासियोंके गैरिक वस्त्र धारण किये। गुरुने आपका नाम स्वामी शिवानन्द सरस्वती रखा। इस प्रकार डा० कुप्पूस्वामी अय्यर अब स्वामी शिवानन्द सरस्वतीमें परिणत होगये।

* * * *

दीक्षित होनेके अनन्तर स्वामीजीके अन्दर निरन्तर यह आवाज सुनायी देने लगी, "यत्र-तत्र विचरण करनेमें क्या रखा है, घोर तपस्यामें क्यों नहीं लीन हो जाते। अपने अनुभव और ज्ञानसे संसारको प्रकाश दो, भूले भटकोंको रास्ता दिखाओ, लोगोंको वास्तविक धर्म और कर्मकी शिक्षा दो, जनमात्रको सन्मार्ग पर चलाओ।"

स्वामीजीने इसको सुना। अन्तरात्मा की प्रेरणाके अनुरूप कार्य करनेके लिए आप उतावले होगये। तपस्या ही आपका प्रथम लक्ष्य बन गया। आप इसके लिए एकान्त, शान्त स्थानकी खोज करने लगे। ऋषिकेशमें यह सम्भव न था। ऋषिकेश स्वयं एक प्रसिद्ध तीर्थ है, दूसरे यह बदरी-केदारके रास्तेमें पड़ता है। इसलिए यहां यात्रियोंका जमघट लगा रहता है। ऐसा स्थान तपस्या तथा यौगिक साधनाके उपयुक्त नहीं। यही सोचकर स्वामीजी उपयुक्त स्थानकी तलाश करने लगे। संयोग वश आपको अपने मन लायक स्थान मिल भी गया।

ऋषिकेशसे आप और भी आगे बढ़ चले। दो तीन मील जानेके बाद आपको गंगाके बायें किनारे पर लक्ष्मणझूला मिला। मणिकूटकी पर्वत शृखलाओंके निम्न भागमें यह गाव एकान्तमें बसा है। यहां लोगोंके कुछ मकान हैं और साधुओंकी कुछ कुटियाएं भी कहीं-कहीं हैं। स्थान मनोरम, दिव्य और शान्त है। किसी प्रकारका शोर गुल नहीं। ऋषिकेश एक छोटा-मोटा शहर है जहां साधारणतया नागरिकोंके उपयोगकी सभी वस्तुएं मिल जाती हैं। परन्तु लक्ष्मणझूला वास्तविक

अर्थमें एक गांव है जहां बाहरकी आधुनिकताने स्वर्गाश्रममें भी प्रवेश नहीं किया है। इसीके समीपस्थ स्वर्गाश्रमको स्वामीजीने पसन्द किया। स्वर्गाश्रममें प्रायः साधुओंके ही आश्रम हैं। थोड़ेसे मकान कुछ और लोगोंके भी हैं।

कथा है कि सकुल रावणको मारनेसे राम और लक्ष्मणको ब्रह्महत्या का पातक लगा तो इसके प्रायश्चित्तार्थ गुरु वशिष्ठकी आज्ञासे दोनों भाई हिमाचलकी शरणमें तपस्या करने गये। लक्ष्मणझूला नामसे जो स्थान प्रसिद्ध है उसीके आस-पास इन दोनों भाइयोंने तपस्या करनेका विचार किया। गंगाके किनारे इन लोगोंने अपने आसन जमाये। लक्ष्मणजीका स्थान वही बतलाया जाता है जहां आज कल लक्ष्मणजीका मन्दिर है। कहा जाता है कि गंगाके आरपार आने जानेके लिये लक्ष्मणने प्रस्तर-शिलाएं एकत्र कर एक पुल बनाया। आजकल लक्ष्मणके उस पुलका कहीं पता नहीं चलता। हाल हीमें लक्ष्मणजीके मन्दिरके सामने झूलेकी शकलका एक पुल किसी मारवाड़ी सज्जनने बनवा दिया है। पुल यहां पहलेसे ही है उक्त मारवाड़ी सज्जनने उसे फिरसे ठीक करवा दिया है। यह विशाल पुल वस्तुतः झूलेकी ही भांति है। लक्ष्मणजीका मन्दिर गंगाके दाहिने किनारे पर और लक्ष्मणझूला गांव बायें किनारे पर है।

श्री स्वामीजीको यही स्थान अपनी यौगिक साधना एवं ध्यानादिके लिये पसन्द आया। प्रारम्भमें आप कई दिनों तक ॐ की तथा भगवानके अन्य नामोंकी रट लगाते हुए भ्रमण करते रहे। आरम-

स्वरूपका ध्यान करना, भगवानका नाम जपना और प्रकृतिके अणु-अणुके साथ अपनेको आत्मसात् करनेका उद्योग करना— बस यही आपके काम थे। दोपहर बीतनेपर आप किसी क्षेत्रसे भोजन माग लाते थे।

रात होनेपर किसी कुटिया या किसी मकानके बरामदेमें सो रहते। तीन चार दिनके बाद आपको एक जीर्ण शीर्ण कुटिया मिली जिसमें अनेक विषधर जन्तुओंने अपना अड्डा जमा लिया था। इस कुटियाका कोई स्वामी नहीं था। स्वामीजीने प्रसन्नता पूर्वक इस पर अपना अधिकार जमाया। आपको इन जन्तुओं अथवा कुटीकी जीर्णावस्था, किसीने उसमें रहनेसे विचलित न किया।

ध्यान और साधनाके अतिरिक्त जो समय बचता उसका उपयोग आप आस पासके जङ्गलों, पहाड़ियों, गिरिकन्दराओंमें भ्रमण करने तथा जोर-जोरसे सस्वर भगवान्‌का नाम लेनेमें अथवा विनयके पद कहनेमें व्यतीत करते।

आप अनेकानेक साधुओं और योगियोंसे मिले। आपको यह देखकर घोर कष्ट हुआ कि इन साधुओंको तरह-तरहके रोगोंका शिकार होना पड़ता है और उनकी चिकित्साका कोई प्रबन्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त योगसाधनके कारण भी कितने लोगोंका स्वास्थ्य गिर गया था। यौगिक क्रियाओंका निरन्तर अभ्यास करनेवालोंके भोजनमें पौष्टिक तत्वोंका होना अत्यावश्यक है। इसके बिना यदि कोई योग

साधन करता है तो यह अपना शरीर भी बढ़ता है। यही कारण है कि प्राचीन कालमें हमारे ऋषि मुनि आश्रमोंमें गायें रखते थे। इनके कष्टोंको देखकर स्वामीजीका दिल पसीज गया। स्वामीजी पूर्वाश्रममें चिकित्सक थे। स्वामीजीका यह चिकित्सकत्व जाग उठा। आपने इन महात्माओंकी सेवा करनेका निश्चय किया। इस निश्चयके अनुसार कतिपय आवश्यक औषधियोंका मंगाना जरूरी हो गया।

अब प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि औषधियोंके लिए द्रव्य कहांसे आये। सहसा स्वामीजीको डाकखानेमें पड़े अपने रुपयोंकी याद आयी। स्वामीजी जब डाक्टर थे तो आपने बीमा कराया था। आपके उन रुपयोंकी अदायगीका समय आगया था। आपने उद्योग कर उन रुपयों को डाकखानेसे उठा लिया। इस द्रव्यसे आपने औषधोपचारकी सामग्री मगाकर 'सत्यसेवाश्रम दातव्य औषधालय' की स्थापना की। इस औषधालयके द्वारा आपने लगभग एक वर्षतक साधुओं, सन्यासियों और समीपस्थ ग्रामवासियोंकी सेवा की। आज भी यह औषधालय उस स्थानपर स्थित है और लोगोंकी सेवा कर रहा है।

धीरे-धीरे स्वामीजी साधु मण्डलीमें श्रद्धा और आदरके पात्र बनने लगे। उनकी सेवाओं और सौम्य, मधुर व्यवहारोंने साधुओंमें उनको अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया। स्वामीजीके प्रति आकृष्ट होकर वहांके महन्तने स्वामीजीके लिए एक अच्छी मजबूत कुटियाका प्रबन्ध कर दिया।

उन दिनों स्वामीजीका यह कार्यक्रम था कि आप प्रतिदिन प्रातः-काल साधुओंकी कुटियोंमें जाकर उनके समाचार पूछते और जिसके लिए जिस बातकी आवश्यकता देखते उसे पूरा करनेका प्रयत्न करते। जिनका स्वास्थ्य क्षीण होता उनके लिए आप घी, दूध, दहीका प्रबन्ध करते। रोगियोंकी आप विशेष देखभाल किया करते थे। जहां आपको किसीके बीमार होनेका समाचार मिला कि आप उसकी शुश्रूषाके लिए दौड़ पड़े। उस साधुके लिए आप भिक्षा मांगकर ले आते, उसकी चिकित्सा करते, उसके कपड़े धोते तथा तरह-तरहसे उसकी सेवा करते।

एक दिन स्वामी जी गंगा तटपर टहल रहे थे। आपने देखा कि एक सन्यासी बदरी नारायणकी ओर जा रहे हैं। उक्त सन्यासीको कोई बहुत पुराना रोग था जिससे वे अत्यन्त परेशान थे। स्वामीजीने उनकी परीक्षा कर उनको यथोचित औषधियां देकर विदा किया इसके कुछ देर बाद, जिस समय स्वामीजी एक दूसरे रोगीकी चिकित्सा कर रहे थे, उन्हें याद आया कि उक्त सन्यासीको यदि अमृतधाराकी यह शीशी मैं दे देता तो उनको कितना लाभ पहुंचता। इस विचारके दिमागमें आते ही स्वामीजी अमृतधाराकी शीशी लेकर दौड़ पड़े। लगातार पांच मील दौड़ते रहनेके बाद स्वामीजी उस सन्यासीको पा सके। स्वामीजीने उन्हें रोक कर अत्यन्त प्रेम भरे शब्दोंमें यह कहकर कि यह शीशी भी अपने साथ रख लीजिये आपको काम देगी दवाकी शीशी संन्यासीके हाथमें दे दी। पाठक सोच सकते हैं कि यात्री

संन्यासीके हृदयमें स्वामीजीके प्रति कितने उत्तम भावोंका उदय हुआ होगा।

लगातार कई-कई घण्टे तक स्वामीजी प्रतिदिन एकान्तमें रहकर ध्यानस्थ हो जाया करते। आपकी यौगिक साधना और साधुओंकी सेवा एक साथ चलती थी। एकको दूसरेका पूरक कह सकते हैं। स्वामीजीकी साधना अधिक ऊंची, गहरी और व्यावहारिक थी।

नित्य प्रति ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर स्वामीजी जोर-जोरसे भगवन्नाम लेते हुए गंगातटकी ओर स्नान करने चलते। स्नान शौचादिसे निवृत्त होकर स्वामीजी अपनी कुटियामें लौट आते और ८-९ बजे तक जप एवं ध्यानमें सारा समय लगाते। इसके बाद, आप जनताकी सेवा, शुश्रूषा और चिकित्साके कार्यमें लग जाते। कभी-कभी तो इस कार्यमें दो तीन बज जाते। और तब फिर, आप अपना कमण्डल लेकर भिक्षा मांगनेके लिए क्षेत्रकी ओर चल पड़ते। आगे चलकर क्षेत्रके अधिकारियोंने स्वामीजीके महत्त्वको समझा और आहारके मामलेमें स्वामीजीको अनेक तरहकी सुविधाएं देने लगे। स्वामीजी इन सुविधाओंका उपयोग कर तो लेते थे पर स्वयं साधारण पदार्थ खा कर घी, दूध, दही आदि अपनी कुटियामें उन लोगोंके लिए यत्न पूर्वक रख देते जिनका स्वास्थ्य इन पौष्टिक पदार्थोंकी मांग करता।

कभी-कभी स्वामीजी आसपासके साधुओंको एकत्र कर धार्मिक व्याख्यान सुनाते और कभी अपने आध्यात्मिक अनुभवोंका वर्णन

करते। अन्य साधुओंसे भी अपने-अपने अनुभव सुनानेकी प्रार्थना स्वामीजी करते। अन्तमें भजन कीर्तन आदिके बाद सभा विसर्जित होती। इस प्रकार जहां नीरसता और निरानन्दकी अवस्था थी वहां स्वामीजीने सरसता और आनन्दकी सृष्टि कर साधु मण्डलीमें जीवनका संचार कर दिया।

दोपहरके बाद स्वामीजी प्रायः लिखते हुए पाये जाते। आध्यात्मिक पथपर चलते समय स्वामीजीको जो भी नये नये अनुभव होते उनको स्वामीजी लिखते जाते थे। उन दिनों कागज आदि की भी बड़ी कठिनाई थी। इसलिए रद्दी अच्छा जो भी कागजका टुकड़ा स्वामीजी-को मिलता उसका उपयोग वह इस कार्यमें करते। शाम होनेपर स्वामीजी अपनी कुटियाका दरवाजा बन्द कर लेते और ध्यान करने लग जाते। स्वामीजीकी समाधिकी यह अवस्था लगभग आधी रात तक चलती।

अपनी साधनाके प्रारम्भिक दिनोंमें स्वामीजीकी यही जीवन चर्या थी।

क्रमशः स्वामीजीकी साधना उग्र होती गयी। आप अपने साधन पथपर वेगसे बढ़ने लगे। इसके साथ ही धीरे-धीरे आपकी प्रसिद्धि भी बढ़ने लगी। किन्तु यह प्रसिद्धि आपके लिए परेशानीका कारण बन गयी। जो यात्री तीर्थाटन करनेके लिए ऋषिकेश आता वह स्वामीजीका नाम सुनकर उनके दर्शनोंके लिए अवश्य आता। इस

प्रकार कभी-कभी स्वामीजीकी कुटियापर, इतनी भीड़ हो जाती कि स्वामीजीको अपना कार्य करनेमें कठिनाई होती। अतएव ऐसे अवसरोंपर स्वामीजी अन्यत्र जाकर छिप जाते। दूसरा उपाय ही क्या था? इस प्रकार छिपनेके चार स्थान स्वामीजीने चुन रखे थे। ये ऐसे स्थान थे जहां साधारणतया लोग नहीं पहुच सकते। इस प्रकार ध्यान, जप आदिके अवसरों पर किसी प्रकारके विघ्नसे स्वामीजी अपनेको बचा लेते। अन्य अवसरों पर वह लोगोंके साथ अवश्य मिलते जुलते।

सिघईकी भूतपूर्व रानी स्वामीजीकी बहुत भक्त थीं। स्वर्गाश्रममें उनका एक बंगला था। वे जब आतीं तो दो-दो, तीन-तीन महीने रहतीं। आप स्वामीजीके लिए बहुतसा खाद्य पदार्थ भेजा करतीं। स्वामीजी उन दिनों बहुत कठिन तपस्या कर रहे थे अतएव इन चीजोंको वह अन्य लोगोंको बांट देते। फिर भी आप स्वामीजीके पास ये पदार्थ भेजती रहीं। एक दिन रानी साहिबाने भण्डारा किया। स्वयं जा-जाकर सब साधुओंको आमन्त्रित किया। उनको आशा थी कि स्वामीजी भी अवश्य सम्मिलित होंगे। स्वामीजी ने अनुभव किया कि उनको इन चीजोंसे बचना चाहिए। अतएव अपने एक शिष्यको बुलाकर आपने कहा कि कुटियाको बाहरसे बन्द कर ताला लगा दो और तीन दिन तक ऐसे ही रहने दो, चौथे दिन खोलना। इधर सब प्रकारसे प्रतीक्षा और प्रयत्न करने पर भी जब रानी साहिबाको स्वामीजीके दर्शन न हो सके

तो वह चली गयी। चौथे दिन जब द्वार खोला गया तो स्वामीजीको यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि रानी साहिबा चली गयीं।

इसी प्रकारकी अन्नजल विहीन कठोर तपस्याएं करके ही स्वामीजी आज उस स्थितिको प्राप्त कर सके हैं जहां पहुंचने पर मनुष्य संसारके बन्धनमें किसी प्रकार नहीं पड़ सकता, जहां पहुंच कर मन सांसारिक पदार्थोंसे विरक्त हो जाता है। मनुष्यका परम पुरुषार्थ, मनको जीतकर इस योग्य बना लेनेमें है कि वह अपनी चञ्चलता छोड़कर तल्लीनताकी स्थिति प्राप्त करे। क्रमशः अपनी उग्र साधनाओंसे स्वामीजीने उस स्थितिको प्राप्त किया। वहां पहुंचनेपर ही मनुष्यको सिद्धावस्थाकी प्राप्ति होती है।

इस सिद्धावस्थाको प्राप्त करनेके अनन्तर स्वामीजीके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि भ्रमणकर पथ-भ्रष्ट, धर्म-कर्म विरहित मानवको उसकी असलियत समझायी जाय और उसे सन्मार्गपर लाया जाय। महान् आत्माएं संसारमें इसी लिए अवतरित होती हैं। स्वामीजीने इस पथपर अपने कदम बढ़ा दिये। यहींसे आपका परि-व्राजक जीवन प्रारम्भ होता है।

दो वर्षतक ऋषिकेशमें रहनेके बाद स्वामीजीने परिव्राजक जीवन बिताना प्रारम्भ किया। इस प्रकारका जीवन स्वामीजीने लगभग चार वर्ष तक बिताया। १९२५ में आप ऋषिकेशसे चलकर शेरकोट पहुंचे। शेरकोटमें स्वामीजीका बहुत स्वागत सत्कार हुआ। कई दिन वहां

रह कर स्वामीजीने भजन और कीर्तन किये। निर्धनों और आर्त-जनोंकी सेवा शुश्रूषा भी आपने की। कितने रोगियोंकी चिकित्सा की।

शेरकोटमें आप नहरके किनारे किनारे पैदल ही हरिद्वार तक आये। रास्तेमें आपको नंगे पांव हर तरहकी भूमिपर चलना पड़ा, सड़कोंके किनारे और मैदानमें सोना पड़ा, पर आपने किसी प्रकारके कष्टका अनुभव न किया। आपको इससे आनन्द मिलता था। इससे कष्ट सहिष्णुता बढ़ती थी। मार्गमें आप सर्वत्र धर्मोपदेश करते आये।

इसके बाद आप फिर रवाना हुए। इस बार आपने खूब भ्रमण किया। रामेश्वर, पुरी, कैलाश, मानसरोवर सब तीर्थोंकी यात्राएं कीं। कैलाश मानसरोवरकी यात्रा स्वामीजीने महारानी सिंघईके साथ की। कैलाश-मानसरोवरके सम्बन्धमें स्वामीजीने एक पुस्तक लिखी है जो अत्यन्त रोचक है। उत्तराखण्डकी ओर जानेवालोंके लिए यह पूर्णरूपसे पथप्रदर्शकका काम करती है।

इस प्रकार चार वर्ष तक भ्रमण करनेके बाद स्वामी जी पुनः ऋषिकेश लौट आये।

६

आनन्द कुटीरमें

इस प्रकार खूब भ्रमण कर, लोगोंमें भगवन्नाम कीर्त्तनके प्रति अभिरुचि उत्पन्न कर एवं सांसारिकताकी ओर वेगसे बढ़ती हुई जनताकी प्रवृत्तिको आध्यात्मिकताकी ओर प्रेरित कर स्वामीजी पुनः ऋषिकेश लौट आये। इस बार आप स्वर्गाश्रम न जाकर गंगाके दाहिने तटपर बस गये। स्वामीजीने जो स्थान अपने रहनेके लिए चुना वह स्वर्गाश्रमके ठीक सामने गंगाके दूसरे किनारे पर ऋषिकेशसे लगभग डेढ़ मील उत्तर है; इस मनोरम स्थानको ही स्वामी-जीने चुना।

यहां आये स्वामीजीको अभी कुछ ही दिन हुए थे कि भक्तों और दर्शनार्थियोंकी भीड़ होने लगी। नित्य सैकड़ोंकी संख्यामें लोग दर्शनार्थ आने लगे। धीरे-धीरे ऐसा भी होने लगा कि कई लोग स्वामीजीके यहां कभी कुछ सीखनेके लिए आते, कभी अपनी किसी

शंकाका समाधान करानेके लिए आते और कभी किसी गुत्थीको सुल-झानेके लिए आते। ऐसे लोग अक्सर वहां ही पड़े न रहकर कई-कई दिनों तक रहने लगे। इस प्रकार स्वामीजीको इन अभ्यागतों और भक्तोंके लिए एक आश्रमकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी ; इस आव-श्यकताने ही आनन्द कुटीरको जन्म दिया। आरम्भमें कुछ दिनों तक तो इस आनन्द कुटीरने कुछ थोड़ेसे लोगोंको, जो स्वामीजीका सत्संग करते थे, लाभ पहुंचाया किन्तु कुछ ही दिनोंमें समस्त समाजको आनन्द प्रदान करने वाली एक शक्तिके रूपमें यह परिणत हो गया।

भक्ति, योग, वेदान्त आदिकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए आने-वाले लोगोंकी आवश्यकताओंका ख्याल कर इस कुटीका विस्तार करना पड़ा। होते-होते यह आज अपने वर्तमान रूपमें पहुच गया है। और इसका नामकरण भी श्री स्वामीजीके नामपर शिवमान हुआ है। भक्तों और साधकोंके लायक यह स्थान सभी तरहसे अच्छा है। इसकी स्थिति अत्यन्त मनोरम है। सामने गंगा, पीछे टेहरी राज्यकी-पर्वत मालाएं, एक ओर ऋषिकेश और दूसरी ओर हरे-हरे वृक्षोंसे भरा हुआ सघन वन। प्रकृतिका मनोमुग्धकर दृश्य देखना हो तो मनुष्यको वहां अवश्य जाना चाहिए। मन्द गतिसे बहता हुआ पवन, कल-कल करती हुई गंगाकी लहरें,—मनको स्थिर, अचंचल करनेके समस्त साधन यहां एकत्र हैं। और सबसे बड़ी बात है हमारे असली स्वरूपको

पहचान कराकर हमें आनन्द प्रदान करनेवाले स्वामीजीका यहां होना। फिर इससे बढ़ कर साधनाके लिए उपयुक्त और कौनसी जगह हो सकती है? क्या शहरों अथवा घनी बस्तियोंमें जहां मनको व्यग्र करने वाले तरह-तरहके साधन मौजूद हैं हम किसी प्रकारकी आध्यात्मिक साधना कर सकते हैं? अथवा क्या हमें यहां साधनाके उपयुक्त शान्त वातावरणकी प्राप्ति हो सकती है? इन्हीं बातोंसे आनन्द कुटीरका महत्व समझमें आ सकता है। यह वास्तविक "आनन्द कुटीर" है।

सन्त, असन्त, पुण्यात्मा, पापात्मा, सज्जन, दुर्जन, आस्तिक, नास्तिक सभीके मनोभाव यहां आकर विशुद्ध हो जाते हैं। सबका यहां समान रूपसे स्वागत होता है और सबको सेवा एवं अध्यात्मतत्व सिखाया जाता है। स्वामीजीकी तेजस्वी एव प्रभावशाली आकृति, मधुर, प्रेमपूर्ण व्यवहार तथा सहृदयता उन सभी लोगोंके भीतरसे, जो उनके सामने जाते हैं, सांसारिकताका विनाश कर उनका असली स्वरूप उनके सामने रख देती है। फल यह होता है कि सभी अपने पूर्व कृत्योंको भूल कर समबुद्धिमें स्थित हो जाते हैं। यही स्वामीजीके दर्शनका सबसे बड़ा फल है। आनन्द कुटीरमें आनेपर लोगोंको सबसे पहले इसी बातका अनुभव होता है। इसी कारण आनन्द कुटीर नामकी सार्थकता है।

इस आनन्द कुटीरको अपना आश्रम बनानेके बादसे स्वामीजी यहीं रहते हैं। यद्यपि बीच-बीचमें आपने संकीर्तन सभाओंके अव-

गर पर तथा धर्म प्रचार कार्यके लिए देशके अनेक भागोंमें दौरे किये हैं तथापि स्थाई रूपसे आप अनन्द कुटीरमें ही रहते हैं। यहीं रह कर स्वामीजीने समस्त संसारको ज्ञानोपदेश दिया है। क्या आप जानते हैं कि यहां रहकर स्वामीजीकी अथवा यहां रहने वाले अन्य स्वामीजी लोगोंकी एवं कुछ सीखने-जाननेकी इच्छासे आये हुए लोगों की दिनचर्या किस प्रकार बीतती है? शायद आप न जनते हों। आप संभवतः यह भी जानना चाहेंगे कि शिवग्राममें क्या-क्या चीजें हैं और स्वामीजीसे उनका कैसा और किस प्रकारका सम्बन्ध है। अच्छा हम आपकी सारी जिज्ञासाओंकी मिटानेका प्रयत्न करते हैं।

पहले देखिये कि अनन्द कुटीरमें रहनेवाले लोग किस प्रकार अपना जीवन बिताते हैं। ब्राह्म मुहूर्तमें लगभग ४ बजे पीछेकी पहाड़ियोंपर स्थित भजनाश्रमसे टन-टन करती हुई घन्टेकी आवाज आती है। इस आवाजको सुनकर आश्रम वासी तुरन्त ही शैयाका परित्याग कर उठ जाते हैं। तदुपरान्त कुछ तो शौच स्नानादि सभी कृत्योंसे निवृत्त हो लेते हैं और कुछ लोग शौचादि कर हाथ मुंह धोकर तैयार हो जाते हैं। इसके बाद सब लोग पहाड़ीपर स्थित भजनाश्रमके लिए चल पड़ते हैं। इस भजनाश्रमसे ही घण्टेकी टन-टन आवाज आयी थी। वहां एकत्र होकर सब लोग भगवद्भजन और प्रार्थना करते हैं।

इस प्रातःकालीन भजनके कार्यक्रममें पहले स्तोत्र पाठ है। स्तोत्र पाठके अनन्तर श्रीमद्भागवतके कुछ अंशका स्वाध्याय होता है। फिर

उपनिषदोंके स्वाध्याय, गीता-पाठ और ॐ का ध्यान करनेके बाद यह कार्यक्रम शेष होता है। कुछ देर तक आसन, बन्ध और मुद्राओंका अभ्यास किया जाता है।

इतना हो चुकनेके अनन्तर कोई एक भक्तजन फल, फूल, दूध आदि पूजाकी सामग्री लेकर आ उपस्थित होते हैं। इसके बाद अभिषेक अर्चना, आरती—पूजाकी सभी क्रियाए—विधिवत् निष्पन्न होती हैं। पूजनके बाद लोगोंमें प्रसाद—खिचड़ी, दूध, फल आदि—वितरित किया जाता है। प्रसाद-वितरणके बाद आश्रमवासी अपनी अपनी कुटियोंको चले जाते हैं। कोई-कोई आश्रमवासी अपनी कुटियोंमें पहुचनेके अनन्तर स्वाध्यायमें निरत हो जाते हैं और कोई-कोई आश्रम सम्बन्धी अन्य कार्योंमें ध्यान देते हैं।

वाणप्रस्थाश्रम, कैलाश कुटीर, शिवानन्द प्राथमिक पाठशाला, कैवल्य गुहा, भजनहाल एव सार्वजनीन आराधना मन्दिर आदि सभी चीजें भूमिकी सतहसे ४० फीट ऊंची पहाड़ी पर स्थित हैं। योगादिकी शिक्षा प्राप्त करने वाले शिष्योंके लिए अलग अलग कुटियां हैं। इनके अतिरिक्त शिवानन्द प्रकाशन सस्थान तथा दिव्य जीवन संघके कार्यालय और नि:शुल्क औषधालय एव चिकित्सालय तथा निःशुल्क क्षेत्र नीचे गंगातटपर एक पुरातन धर्मशालामें अवस्थित हैं।

भजन पूजनादि कृत्योंके समाप्त होनेपर कुछ लोग शिवानन्द प्रकाशन सस्थानके कार्यालयमें आते हैं। यहाँ आकर स्वामीजी बाहरके

भक्तों और शिष्योंके आये हुए पत्रोंका उत्तर देते हैं तथा अन्य दाइप योग्य कार्योंका वितरण आश्रम वासियोंमें करते हैं। बीच बीचमें स्वामीजी अति मधुर स्वरमें, भावभरे शब्दोंमें विनयके पद भी गाते जाते हैं। स्वामीजीके इन गानोंमें कभी-कभी चार-चार, पांच-पांच भाषाओंका सम्मिश्रण हो जाता है, किन्तु इनसे उनकी मधुरता और भावप्रवणतामें कुछ-न-कुछ वृद्धि ही हो जाती है। स्वामीजी इस प्रकारके भजनोंकी रचना अति शीघ्र कर लेते हैं। स्वामीजीके साथ साथ अन्य लोग भी इनको गाते जाते हैं।

मध्यान्ह रात्रिमें स्वामीजी अपनी कुटियामें चले जाते हैं। वहां भोजन करनेके बाद स्वामीजी कुछ देर तक विश्राम करते हैं और उसके बाद ही लिखने बैठ जाते हैं। स्वामीजीके पास विविध विषयोंके शीर्षकोंके साथ कई कापियां पड़ी रहती हैं। इस समय स्वामीजी प्राय ध्यानस्थ हो जाते हैं। जहां कोई नया अनुभव हुआ या किसी प्रकारका प्रकाश मिला कि स्वामीजीने उन कापियोंमेंसे उपयुक्त कापीका उपयोग किया। इस प्रकार स्वामीजी काफी देरतक चिन्तन, लेखन और ध्यानका काम करते रहते हैं।

इस समय अभ्यागतोंको छुट्टी रहती है। वे अपने इच्छानुसार चाहे तो आश्रमके पुस्तकालयसे कोई पुस्तक लेकर उसका स्वाध्याय कर सकते हैं अथवा किसी आश्रम वासीसे ज्ञान चर्चा कर कुछ सीख सकते हैं। अभ्यागतोंके साथ आश्रम वासियोंका व्यवहार इतना

सौम्य, मधुर, शिष्ट और सौहार्द्रपूर्ण रहता है कि अभ्यागत सदा ही उनके सतसगके लिए लालायित रहते हे । उनका सतसंग करनेसे बहुत कुछ सीखा भी जा सकता है ।

आश्रम वासियोंमेंसे कुछ तो स्वामीजी द्वारा दिये गये टाइपके काममें व्यस्त रहते हैं, कुछ प्रूफ सशोधनका कार्य करते रहते हैं, कुछ अभ्यागतोंकी देख रेख किया करते हैं, कुछ आश्रमकी व्यवस्थाका ध्यान रखते हैं और कुछ स्वाध्याय आदिमें रत रहते हैं ।

इस प्रकार दो तीन घण्टे बीत जाते हैं । पाच बजेके लगभग स्वामीजी पुन कार्यालयमें आते हैं और टाइप किये हुए कागज पत्र देखते हैं । साथ ही भजन गायन भी चलते रहते हैं । इन सबमें प्राय १ घण्टा समय लग जाता है । छ बजे पुन भजनाश्रमकी ओर लोग जाते हैं । इसी समय स्वामीजी दर्शनार्थियोंको दर्शन देते हैं, उनके दु ख-दर्द सुनते हैं और उनको दूर करनेका यत्न करते हैं ।

कभी कभी कोई साधु-सन्यासी स्वामीजीके पास आकर कम्बल अथवा अन्य वस्त्रोंकी मांग करते हैं । स्वामीजी उनसे कीर्तन, भजन कराकर सहायतार्थ कुछ द्रव्य दे देते हैं । साथ ही उनको उत्साहित करनेके लिए यह भी कह देते हैं—"आपका स्वर बहुत अच्छा है । आप हरिनाम कीर्तन अच्छा करते हैं ।" इस प्रकार नित्य ही लोग स्वामीजीके पास सहायतार्थ आते रहते हैं । एक दृष्टिमात्रसे ही स्वामीजी

उनकी भाव लेते हैं और तदनुरूप उनकी सहायता करते हैं। स्वामीजी कभी किसीको निराश नहीं करते।

इसके बाद सब लोग भजनाश्रमकी ओर बढ़ते हैं। स्वामीजीमें इतनी स्फूर्ति है कि वे अन्य लोगोंसे कहीं पहले उस ऊंची पहाड़ीपर चढ़ जाते हैं। सब लोगोंके एकत्र हो जानेके बाद पूजनादि कृत्य शुरू होते हैं। पूजनके बाद पुरुष सूक्तका पाठ फिर अष्टोत्तरशत नामार्चन, तदुपरान्त आरती की जाती है। इसके बाद ही प्रार्थना और भजनका कार्यक्रम प्रारम्भ होता है। प्रातःकालकी भांति इस कार्यक्रममें नाम कीर्त्तन, श्रीमद्भागवतका पाठ एवं वेद पाठ तथा किसी अन्य दार्शनिक ग्रन्थके पाठके बाद इस पाठ और स्वाध्यायका क्रम समाप्त होता है। इतना हो चुकनेके बाद आश्रमवासी सन्यासियोंमेंसे कोई-कोई अपने आध्यात्मिक अनुभवोंका वर्णन करते हैं अथवा स्वपठित किसी आध्यात्मिक और वेदान्तिक ग्रन्थकी कथा कहते हैं। इसके अनन्तर स्वामीजी कुछ दिन तक कीर्त्तन करते हैं, फिर इसके बाद सब लोगोंको आध्यात्मिक शिक्षाएं देते हैं। अधिकतर स्वामीजी किसी आध्यात्मिक विषयपर प्रवचन कहते हैं। यदि कोई विद्वान और पण्डित कभी-कभी आते हैं तो स्वामीजी उनसे भी कुछ उपदेश देनेके लिए कहते हैं।

लगभग नव बजे रातको भजन-प्रार्थनाका समस्त कार्यक्रम समाप्त होता है। इसके पश्चात आश्रमवासी अपनी-अपनी कुटियोंमें चले जाते हैं। स्वामीजी अभ्यागतोंसे थोड़ी देर तक बातें करते हैं, उनको उप-

देश देते हैं और हर प्रकारसे उनके दुःख दर्दकी कहानी सुनकर उसे दूर करनेकी कोशिश करते हैं। किसीको कोई शंका रहती है, किसी को साधनाके सम्बन्धमें कुछ पूछना रहता है और किसीको अन्य प्रकारकी बातें समझनी रहती हैं। स्वामीजी सबको सन्तुष्ट कर उनके साथ नीचे आते हैं। उनको उनकी कुटियोंमें पहुंचाकर और यह देख कर कि उनको सभी आवश्यक सामग्री मिल गयी है अपनी कुटीकी ओर चलते हैं।

संसारके बन्धनोंसे विमुक्त बहुतसे भक्त और साधक, जो अपना सारा समय साधनामें लगाना चाहते हैं तथा जो आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, आश्रममें भर्ती किये जाते हैं। इन लोगोंको विवेक, वैराग्य, तप, त्यागकी शिक्षा दी जाती है। इस समय इनको ब्रह्मचर्य व्रतका कठोरतासे पालन करना पड़ता है। जब इनकी साधना कुछ आगे बढ़ जाती है तो इनको सन्यासाश्रममें दीक्षित किया जाता है। साधना दृढ़ और बलवती होनेपर इनको देशके विभिन्न स्थानोंमें एकान्त सेवन, साधन और सेवा कार्यके लिए भेज दिया जाता है। इस प्रकार प्रति वर्ष नये साधक भरती होते रहते हैं और पुराने साधकोंको अन्यत्र भेजा जाता है, जो देशके अनेक स्थानोंमें रहकर अपनी और मानव समाजकी उन्नतिके लिए प्रयत्न किया करते हैं।

गीतामें योगकी व्याख्या करते हुए भगवान कृष्ण कहते हैं— 'योगः कर्मसु कौशलम्' एवं 'समत्वंयोग उच्यते।' स्वामीजीने योगकी इसी परिभाषाके अनुसार अपना साधन-क्रम स्थिर किया है। यदि हम कहें कि स्वामीजीकी सफलताका रहस्य इन परिभाषाओंके अनुसार अपनी साधनाको परिचालित करनेमें छिपा हुआ है तो गलत न होगा।"

स्वामीजीका स्पष्ट कथन है कि आत्मशुद्धि तथा अद्वैत भावको विकसित करनेके लिए कर्मयोग अथवा निःस्वार्थ सेवासे बढ़कर अन्य मार्ग नहीं है। स्वामीजीकी पहली शिक्षा यही है,—"इस कलियुगमें, जब कि लोगोंके मन पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षासे ओत प्रोत हैं, जब कि लोगोंके आचार-व्यवहार मर्ममें यह असरकृत चीज घुस गयी है, दूसरोंकी स्वार्थ विरहित सेवा ही वह वस्तु है जिसका अवलम्बन कर हम अपने मनको अचपल और ठीक रख सकते हैं। हमें कभी भी यह न सोचना चाहिए कि अमुक कार्य हम अपने लिए और अमुक कार्य दूसरोंके लिए करते हैं। सदा यही ध्यान रखना चाहिए कि ये सारे कार्य हमारे द्वारा एक दूसरी शक्ति करा रही है। इससे हमारा कोई भी सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार मनकी प्रवृत्ति भगवानकी ओर फेरी जा सकती है।"

पहले पहल इसी योगकी शिक्षा स्वामीजी सब लोगोंको देते हैं। स्वामीजी अपने दैनिक व्यवहारोंमें सदा इसका पालन करते हैं, जो भी व्यक्ति स्वामीजीके सामने आ जाता है उसकी सेवा वह

भगवानकी सेवा समझ कर करते हैं। संसारके प्रत्येक कृत्यको स्वामीजी भगवानकी लीलाके रूपमें देखते हैं, और सबको उस लीलानागरकी प्रतिमूर्त्ति समझते हैं।

अध्यात्म पथपर लोगोंको परिचालित करने, अध्यात्मवादकी शिक्षा देने तथा योग, वेदान्तका ज्ञानदान देनेमें स्वामीजी पूर्ण सिद्धहस्त हैं। सांसारिक वासनाओं और संस्कारोंसे भरे हुए मनको शुद्ध कर नये साधकको आध्यात्मिक जीव बना देना स्वामीजीके लिए बायें हाथका खेल है।

स्वामीजी ऐसे लोगोंको पहले जप और ध्यानकी शिक्षा देते हैं। फिर रुग्ण और शारीरिक व्याधि ग्रसित महात्माओंकी सेवा करनेका आदेश देते हैं। स्वामीजीकी आज्ञा रहती है कि पूर्ण उत्साह, उमंग और सहृदयताके साथ साधु महात्माओं अथवा किसी भी प्राणीको सेवा करनी चाहिए। साथ ही साधककी प्रवृत्ति और ज्ञानके अनुसार स्वामीजी उसके स्वाध्यायके लिए पुस्तकोंका भी निर्देश कर देते हैं। किसी प्रकारकी कठिनाई उपस्थित होनेपर स्वामीजी उसको दूर करते हैं, उनकी शंकाओंका समाधान करते हैं तथा उनके गूढ़ार्थोंको भी समझाते हैं।

इस क्रियाके साथ ही साथ स्वामीजी इन साधकोंको अपने विविध लेखोंको फिरसे लिख डालनेका परामर्श देते हैं। इससे साधकोंका ज्ञान बढ़ता है। उनको योग, वेदान्तादिकी बहुत सारी बातें समझमें आ

जाती हैं और उनको पारिभाषिक शब्दोंका ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यौगिक संस्कार उनकी नस नसमें प्रविष्ट हो जाते हैं। कभी-कभी स्वामीजी स्वाध्याय, लेखन, सेवा आदि कार्योंको बन्द करनेका आदेश देकर केवल ध्यान और धारणाकी ओर प्रवृत्त करते हैं।

इस अवस्थामें पूर्णतया मौन-व्रतका पालन करना पड़ता है। लिखकर बातें करना अथवा सिर हिलाना भी मना रहता है। साधकको अपनी कुटियामें रहकर केवल जप, तप और ध्यानमें ही लीन होना पड़ता है। वे केवल शौचादिसे निवृत्त होनेके लिए अथवा भिक्षा प्राप्त करनेके लिए ही अपनी कुटियासे बाहर आ सकते हैं। इस प्रकार स्वामीजी आश्रममें प्रविष्ट होनेवाले लोगोंको वैराग्यकी ओर ले चलते हैं।

अंग्रेजोंकी एक कहावत है जिसका अभिप्राय है—मनुष्य और रुपयेका सदुपयोग तभी हो सकता है जब उन्हें व्यस्त रखा जाय। * मनुष्य जब किसी काममें लगा रहता है तो उसका मन उसीमें लीन रहता है। बेकार बैठे रहने पर उसका मन चचल हो उठता है। तरह-तरहकी खुराफातकी बातें वह उसी समय सोचा करता है। यही कारण है कि स्वामीजी आश्रम वासियोंको तथा अपने समस्त शिष्यों

---

* *Men and money are useful only when they are busy.*

भक्तों और साधकोंको इस बातका उपदेश करते रहते हैं कि बेकार कभी न बैठना चाहिए। मनुष्यको सदा काममें लगे रहना चाहिए और जो काम भी वह अपने हाथमें ले उसे पूर्ण निष्ठा और एकाग्रताके साथ करे।

वर्षमें दो तीन बार बड़ी बड़ी छुट्टियोंमें जो साधना समारोह होते हैं। उनसे साधकोंको सम्मिलित कीर्त्तन, ध्यान और योग-साधनका अभ्यास होता है। इन साधना सप्ताहोंमें स्वामीजी प्रतिदिन प्रातःकाल कुछ उपदेश करते हैं। इनसे साधक यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार क्रमशः उनकी साधनामें दृढ़ता और कुशलता आती रहती है। यहा जो कुछ उनको सिखाया जाता है उसका अभ्यास वे अपने घरोंपर आकर भी करते हैं और इस तरह स्वामीजीके पास सदा न रहकर भी लोग लाभ उठाते हैं। आनन्द कुटीरमें रहते हुए स्वामीजी देश देशान्तरके शिष्योंको साधनामें इस प्रकार सहायता प्रदान कर उनको अभीष्टकी सिद्धि कराते रहते हैं।

७

आध्यात्मिक विशेषताएं—मत और उद्देश्य

सांसारिक पुरुषोंके लिए सन्तोंकी आध्यात्मिक विशेषताओंके सम्बन्धमें कुछ लिखनेका प्रयत्न करना अशोभनीय-सा मालूम होता है। जो व्यक्ति उस सिद्धावस्थामें पहुंचा हो वही दूसरे सन्तोंकी महिमा या उनकी आध्यात्मिक विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकता है। अतएव स्वामीजीकी आध्यात्मिक विशेषताओंके सम्बन्धमें हमारे जैसे व्यक्तिके लिए कुछ लिखना बौनेका ताल वृक्षकी डाली पकड़नेके लिए चेष्टाशील होनेके समान होगा। परन्तु संसारसे ऊपर उठे हुए, यहांके रागद्वेषादि तथा सभी प्रकारके द्वन्द्वोंके काफी ऊपर चले जानेवाले व्यक्तिके अन्दर इतर जनके मुकाबिलेमें जो एक विशेषता होती है, उनमें त्याग, तप और सेवादिके कारण जो तेजस्विता होती है उसका, उससे ही प्राप्त आलोकमें, हम लोग थोड़ा बहुत दर्शन कर सकते हैं। अतएव इसी आधार पर स्वामीजीके सम्बन्धमें जैसा-कुछ लेखकका अनुभव है वह व्यक्त करनेका प्रयत्न किया जायगा।

स्वामीजीको ध्यानसे जो कोई भी पहली बार देखेगा उसके अन्दर यह धारणा घरकर जायगी कि स्वामीजीका अवतार गिरते हुए भारतको ऊपर उठानेके उद्देश्यसे हुआ है। भारत आज पश्चिमकी जड़वादी सभ्यताके अन्धानुकरणमें लगा हुआ है। अपनी प्राचीन अध्यात्ममूलक सभ्यताको उसने सर्वथा भुला दिया है। यही कारण है कि आज भारतका बुरी तरहसे पतन हो गया है और दिन-दिन होता जा रहा है। आज हम हर तरहसे परेशान हैं, तरह तरहके सकटोंमें पड़े हैं, हमें अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्यका ज्ञान नहीं है, धर्म कर्मसे कुछ सम्बन्ध नहीं है और शुद्ध, सही रास्तेका ज्ञान नहीं है। अतएव इस बातकी आवश्यकता है कि हमें अपनी वास्तविक स्थितिका ज्ञान हो, हम अपने लक्ष्यको, अपने उद्देश्यको और अपने पथको पहचानें और उसपर चलें। किन्तु सही रास्ते पर हमें लगानेके लिए एक पथप्रदर्शककी जरूरत है, जो अज्ञान रूपी हमारे तमको दूरकर ज्ञान रूपी प्रकाशसे उस पथको आलोकित कर दे, जिससे हम उस पथपर आसानीसे चल सकें। स्वामीजीका आविर्भाव इसी उद्देश्यको लेकर हुआ है।

भगवानने कहा है—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

इस कथनको ध्यानमें रखकर ,देखा जाय तो पता चलेगा कि स्वामीजी जैसी दिव्य शक्तियोंकी आवश्यकता आज जैसी कभी न थी। धर्म-कर्मके ह्रासकी जो कल्पना हम रावण, कंस आदिके समयमें करते या कर सकते हैं उससे अवस्था आज तनिक भी भिन्न नहीं है। अपने आचार-व्यवहारसे संसारको सत्पथ दिखानेकी जितनी आवश्यकता रामके समयमें थी उतनी ही आज भी है। अर्जुनको जिस समय निष्काम कर्मयोगकी दीक्षा दी गयी थी उस समय भारतमें स्वार्थ और द्वेषादिका जितना प्राबल्य था उससे आज अधिक ही है। उस समय लाठीवालेकी 'भैंस' का व्यवहार यदि साठ प्रतिशत था तो आज वह शत प्रतिशत हो गया है। इसलिए यह बहुत आवश्यक था कि कोई दिव्य पुरुष उत्पन्न हो कर हमारी अज्ञान जनित तमिस्राको दूर कर हमें सत्यका दर्शन कराता। स्वामीजी का अवतार हमारी यही आवश्यकता पूरी करता है।

एक बार भी जिसने स्वामीजीका दर्शन किया उसको तुरन्त अनुभव हुआ कि वह हमारी दिव्य कल्पनाओंसे भी बहुत ऊपर' उठ गये हैं। स्वामीजीकी नस-नसमें समता, दया, कोमलता, सहिष्णुता, धैर्य, क्षमा, त्याग, सेवा और विश्वप्रेमके भाव भरे हैं। महाभारतमें आता है—"आत्मज्ञानके दानसे बढ़कर संसारमें और किसी प्रकारका दान नहीं है।" आज स्वामीजी 'सर्वभूतहितेरतः'की भावनासे ओतप्रोत होकर इसी चीजको वितरित कर रहे हैं। स्वामीजीका दर्शन करनेवाले-

को तुरन्त मालूम पड़ जाता है कि उनके अन्दर न जाने कहांकी शक्ति छिपी हुई है कि वे एक साथ इतने सारे कार्य कर लेते हैं। स्वामीजीको अष्टावधानी कहा जाता है किन्तु हमारा खयाल है कि वह इससे कहीं आगे बढ़ गये हैं। उनकी तेजस्वी प्रकृति, उनकी प्रतिभा, दिव्य तेजसे प्रकाशमान उनकी आकृति, बिना किसी आडम्बरके सबको अपने समान ही समझना और सबसे स्पष्ट और सीधी बातें करना तथा अध्यात्म शास्त्रके प्रत्येक अगपर इतनी सरल और सुरुचिपूर्ण पुस्तकें लिखना, दीन-दुखियों और रोगियोंकी सेवामें लगे रहना, योगाभ्यासियोंको उसकी शिक्षा देना आदि कार्य, जो स्वामीजी एक साथ करते हैं, किसको आश्चर्यमें न डालेंगे, कौन इससे प्रभावित हुए बिना रहेगा ?

स्वामीजी इतने नियमित हैं, अपने समयके इतने पाबन्द हैं कि उनका कोई भी कार्य अस्तव्यस्त ढगसे हो इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। नित्य नियम पूर्वक स्वामीजी निश्चित समय पर दिव्य जीवन संघके कार्योंमें भाग लेते हैं, रोगियोंकी देखभाल, सेवा-शुश्रूषा करते हैं, आसन, प्राणायाम, जप, ध्यान करते हैं और साधकोंको योगादिकी शिक्षा देते हैं।

स्वामीजी अपना सभी काम अपने आप करते हैं। कभी किसीको अपनी सेवा करनेका अवसर नहीं देते। स्वामीजीके चरण स्पर्श कर सकना एक टेढ़ी खीर है। आप उनके पास जाइये तो वह आपको ही पहले दण्डवत करेंगे। पहले जब स्वामीजी कीर्त्तन

सभाओं आदिमें जाते तो अपना सारा सामान अपने कन्धेपर लाद कर ले जावें। इस प्रकारकी कष्टसहिष्णुताका जीवन उनको अत्यन्त प्रिय है। और इसी बातकी शिक्षा स्वामीजी अपने शिष्योंको सदा दिया करते हैं। स्वामीजीका कहना है कि अपना काम अपने आप करनेसे आनन्द तो प्राप्त होता ही है साथ ही मनुष्यमें आत्म-निर्भरता विशेष रूपसे आती है। और आध्यात्मिक प्राणीके लिए यह सबसे बड़ी चीज है। जो दूसरोंसे सेवा लेगा, उसकी अपेक्षा करेगा, वह दूसरोंकी सेवा कभी नहीं कर सकता और अगर करना चाहे तो उसमें स्वार्थका भाव अवश्य रहेगा। इसीलिए स्वामीजी न तो स्वयं किसीको अपनी सेवा करने देते हैं और न अपने शिष्योंको इस प्रकारकी सेवा लेनेका आदेश देते हैं। स्वामीजीका एकमात्र कहना है कि लेनेके स्थानमें दो। देनेसे बढ़कर संसारमें कुछ नहीं है। देनेमें जो आनन्द है वह लेनेमें किसी प्रकार भी नहीं। स्वामीजीकी शिक्षा यही रहती है कि सेवा करते समय सेवकके अन्दर अपनेपनका भाव नहीं होना चाहिए और न यही भाव उत्पन्न होना चाहिए कि वह किसी व्यक्ति विशेषकी सेवा कर रहा है। उसके अन्दर केवल यही भाव रहना चाहिए कि वह उस शक्तिकी सेवा कर रहा जिसने उसको सृजा है और जो स्वयं उसके अन्दर विद्यमान है। उसको समझना चाहिए कि उसके अन्दर अवस्थित प्रेरक शक्ति ही उससे सारे कार्य कराती है; वह तो केवल निमित्त मात्र है। और फिर यह भी

ख्याल रखना चाहिए कि वह वस्तुतः है भी क्या ? वह तो उस प्रेरक शक्तिका ही एक अंश है। जब तक यह भाव उसके अन्दर नहीं आता तब तक वह शुद्ध हृदयसे सेवा नहीं कर सकता। अतएव सेवाके साथ-ही-साथ इस भावको भी बढ़ाना चाहिए।

कोई भी हो, स्वामीजी उससे स्नेह करते हैं, उसके दुःखोंको अनुभव करते हैं और उसको दूर करनेके लिए चेष्टा करते हैं। जो दूसरोंके लिए अपनेको बलि चढ़ा दे उससे बड़ा योगी कौन होगा? निःस्वार्थ भावसे किसी पदार्थकी चिन्ता करने वाले और उसके लिए उद्योगशील होनेवाले लोगोंकी संख्या अत्यन्त विरल होती है। इन लोगोंके अन्दर दूसरोंकी भलाईके अतिरिक्त और कोई चीज नहीं रहती। आर्त्तजन सुखी हों, उनका कष्ट मिटे, वे दैन्यकी अवस्थाके बाहर आयें यही उनका परम पुरुषार्थ होता है। स्वामीजीका सदासे ही एकमात्र प्रयत्न इस एक ही चीजकी ओर रहा है। बाल्यावस्थासे ही स्वामीजीमें सेवा और परमार्थके भाव विद्यमान रहे हैं। उस समयसे ही आप लोगोंको सुखी बनानेका उद्योग करते आ रहे हैं। इस भावका अत्यन्त विकास उस समय हुआ जब वह डाक्टर बने। आज भी स्वामीजी इस कामको करते रहते हैं, किन्तु पहले जहां वह लोगोंके केवल सांसारिक दुःख दूर करते थे वहां अब उनके आध्यात्मिक दुःख भी दूर करते हैं।

एकबार याचना करने मात्रसे प्रत्येक व्यक्ति स्वामीजीका स्नेह प्राप्त करसकता है। उनके अन्दर किसी प्रकारकी संकीर्णता नहीं है। वह उस

अरण्यमें पहुंच गये हैं जहां पहुंचनेपर इस मूर्त शरीरका कोई महत्व नहीं रहता, जहां आत्माको ही सब कुछ समझा जाता है और इसीलिए जीव-जीवमें भेद नहीं मालूम पड़ता। यही कारण है कि स्वामीजी सबको समान दृष्टिसे देखते हैं और सबको ही समान समझते हैं। उनकी दृष्टिमें पण्डित और मूर्ख, ब्राह्मण और चाण्डाल, सन्यासी और गृहस्थ, योगी और भोगी सब बराबर हैं। अतः वे समान रूपसे सबकी सेवा और सहायता करते हैं। स्वामीजीने एक बार एक भक्तसे कहा था—"मैं सबको सेवा करनेके लिए, सबको सुखी बनानेके लिए, सबका अज्ञान हरनेके लिए ही विद्यमान हूं।" कितने ऊंचे भाव हैं, समताकी कितनी जबर्दस्त भावना है। इस कथनका महत्व 'सब' शब्दमें ही छिपा है। पापी हो, दुराचारी हो, साधु हो सदाचारी हो सबका एक भावसे, एक प्रकारसे वह स्वागत करते हैं, सबको अपना स्नेह प्रदान करते हैं, सबका अज्ञान मिटानेका यत्न करते हैं एवं सबको सुबुद्धि प्राप्ति हो इसके लिए भगवानसे प्रार्थना करते हैं। सभी लोगोंके मानसिक धरातलको ऊंचा उठाना, उनको विवेक बुद्धिकी प्राप्ति हो इसके लिए ध्यान रखना यह स्वामीजीकी सबसे पहली चेष्टा रहती है।

स्वामीजी द्वारा प्रस्तुत साहित्य ही इस बातका प्रमाण है कि वह अध्यात्म पथपर कितना आगे बढ़ गये हैं। इससे ही हम स्वामीजीकी प्रतिभा और बुद्धिकी प्रखरताका अनुमान कर सकते हैं। अध्यात्म-

बाहरा कौनसा एसा अग है जिसपर स्वामीजीने प्रकाश न डाला हो और वह भी इतने स्पष्ट रूपसे, इतने सरल और विवेचनात्मक ढगसे कि साधकोंको, योगाभ्यासियोंको किसी प्रकारकी कठिनाईका अनुभव नहीं होता। भाषाकी सरलता और प्रतिपादन शैलीकी विशिष्टतासे ही हम स्वामीजीके हृदयकी विशुद्धता, सरलता, उनके ज्ञान और उनकी क्रियात्मिकताका अन्दाज कर सकते हैं। स्वामीजीकी पुस्तकों, उनके लेखों और उनके उपदेशोंने इस बातकी साफ झलक मिलती है कि स्वामीजी सभी क्रियाओंमें दक्ष हैं, सबके विशेषज्ञ हैं और सबमें पारगत हैं। किसी विषयको गूढ़ और दुर्बोध बनाना स्वामीजी जानते ही नहीं।

एक सबसे बड़ी विशेषता स्वामीजीमें है देश, काल, अवस्थाका ध्यान रखना। पुरातन कालमें हमारे ऋषि-मुनियोंने जो आदर्श हमारे सामने रखे थे और जो कार्य निर्धारित किये थे वे उस समयके अनुरूप थे। उनको उपयोगिता उस समय अधिक हो सकती थी, किन्तु आजकी दुनिया उस युगकी दुनिया नहीं है। तबमें और अबमें महान अन्तर पड़ गया है। इसलिए अपना आदर्श और लक्ष्य वही रखते हुए भी हमें आज कलकी परिस्थितियोंके अनुसार मार्गका चुनाव करना चाहिए ताकि हम उसपर आसानीसे बिना किसी विघ्न बाधाके चल सकें। ऐसा न होनेसे सफलता मिलनेमें कठिनाई होती है और उस कठिनाईके कारण मनुष्य घबरा कर गढ़ेमें गिर जाता है। इस बातका अनुभव कर स्वामीजीने समयको ध्यानमें रखकर ऐसे पथका

निर्देश किया है जिसपर साधक सुविधा-जनक रूपमें चलकर अपने लक्ष्यको प्राप्त कर सकता है। यदि उसमें तनिक भी साहस और कष्ट-सहिष्णुताका भाव हुआ तो वह अपने मार्गसे विचलित नहीं हो सकता। जहाँ हम देखते हैं कि आज कलके अनेक महात्मा उसी पुराने पथका निर्देश कर अप्रत्यक्ष रूपसे लोगोंको आत्मज्ञान प्राप्त करनेसे विरत करते हैं वहाँ स्वामीजी इस अवस्थामें उनकी सहायता करते हैं।

इसके अतिरिक्त स्वामीजीने एक विशेष बात और भी की है। पुराने जमानेमें और आज दिन भी कई महात्मा शिष्य ग्रहण करनेमें सकोच करते हैं। उनका खयाल है कि किसीको शिष्य रूपमें ग्रहण करनेसे उसका दायित्व अपने ऊपर लेना पड़ेगा परन्तु जैसे स्वामीजी लोगोंका दायित्व ही ग्रहण करने आये हैं। जिसने भी एकबार शुद्ध *हृदयसे प्रार्थना की कि 'भगवन ! मैं अन्धकारमें हूं, पथ भ्रष्ट हूं मुझे प्रकाश दीजिये और रास्ता बताइये उसीकी सहायता करने स्वामीजी* दौड़ पड़ते हैं। उसकी उन्नति और विकास ही स्वामीजीका एकमात्र उद्देश्य बन जाता है। अपनेको भूलकर स्वामी सर्वभावसे उसके हो जाते हैं और उसकी साधन' एवं उसकी तपस्याको बलवती बनानेके लिए उद्योग करते रहते हैं। उसे साहस और शक्ति प्रदान करते रहते हैं। स्वामीजीकी यही सबसे बड़ी विशेषता है जो सबको उनकी ओर खींच ले जाती है और उनका जीवन सफल बना देती है। आजकल सच्चे गुरु नहीं मिलते और जो मिलते भी हैं वह लोगोंको अपने पास नहीं

पहुचने देते और न किसी प्रकार उनकी सहायता करनेके लिए तैयार होते हैं।

*   *   *   *

ब्रह्म एक है। जीवका प्रयत्न उस तक ही पहुचनेका होता है, क्योंकि वह उसीका अंश है। जीवके इस प्रयत्नके भिन्न-भिन्न तरीके हुआ करते हैं। वे तरीके ही मार्ग कहे जाते हैं, जिनपर चलकर वह उस लक्ष्यतक पहुचता है। अपनी-अपनी सिद्धियोंके अनुसार पुरातन कालीन सिद्धों और आचार्योंने लोगोंको ये मार्ग बतलाये हैं। इसीलिए हमारी यात्राके मार्ग भिन्न-भिन्न हो गये हैं, पर लक्ष्य सबका एक ही है। इतना होते हुए भी तत्वज्ञान सम्बन्धी अन्तर विभिन्न मार्गोंमें हो जाते हैं। इसी प्रकारका अन्तर हमारे यहां भी है। यद्यपि कई लोग द्वैतवाद और त्रैतवादको भी मानते हैं परन्तु भगवानका यह कथन कि "ममैवांशो जीव लोके" इसको स्पष्ट कर देता है कि जीवकी सत्ता ब्रह्मपर ही अवलम्बित है। तत्वज्ञानके उपलब्ध इतिहासके आधारपर हम यही कहनेके लिये बाध्य होते हैं कि प्रारम्भमें अद्वैतवादका ही प्रचार था, किन्तु आगे चल कर अन्य अनेक वादोंके जन्म हुए। बहुत समय पीछे जब बौद्धोंने ब्रह्म और जीवकी सत्ताके सम्बन्धमें दूसरी तरहका प्रचार किया तो उनके मतका खण्डन करते हुए श्री शंकरने केवल अद्वैत मतका पुनर्प्रतिपादन किया। आजके हिन्दू समाजका अधिकांश भाग इसी मतका अनुयायी है। स्वामीजी भी

श्री शंकरके इसी केवल अद्वैत मतके मानने वाले हैं। आपकी दृष्टिमें यह बिल्कुल सच है—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी—चेतन अमल सहज सुखराशी।

किन्तु स्वामीजी इस केवलाद्वैत वेदान्तकी शिक्षा कुछ विशिष्ट लोगोंको ही देते हैं; वस्तुत कहा जाय तो ज्ञान मार्गके इस कठिन साधनका उपदेश स्वामीजी करते ही नहीं। प्रायः वह भक्तिका ही प्रचार करते हैं। सभी साधनाएं सिखाते हुए भी स्वामीजी भक्तिपर अधिक बल देते हैं। साधकोंके अन्दर मल होने पर वह निष्काम कर्मका उपदेश करते हैं। विक्षेप होनेकी अवस्थामें उपासना, त्राटक और ध्यान करनेका आदेश करते हैं। किसी भी अवस्थामें स्वामीजी लोगोंके अन्दर भ्रम या चंचलता की सृष्टि नहीं करते। उद्देश्य-साधनका आवश्यक उपादान यह शरीर ही है। इसलिए इस बातका उपदेश करते हुए भी कि शरीरकी रक्षा करनी चाहिए स्वामीजी कहा करते हैं कि असग बुद्धि एवं मोह विरहित भावसे ही इसकी रक्षाके कार्यमें तत्पर होना चाहिए। शरीरको केवल निमित्त और उपादान मानना ही श्रेयस्कर है। इससे आगे कुछ नहीं। जैसे लुहार अपने हथियारोंकी रक्षा तो करता है पर उनको लक्ष्य न मानकर केवल हथियार ही माना करता है उसी प्रकारका भाव इस शरीरके प्रति हमारे अन्दर भी होना चाहिए। और इसीलिए स्वामीजीका कहना है कि हमें किसी उत्तम कार्यकी सिद्धिके निमित्त शरीरकी बलि चढ़ानेके लिए भी तैयार रहना चाहिए। चित्त

शुद्धिके लिए स्वामीजी अपनी रुचिके अनुकूल किसी मन्त्रका नियमित रूपसे जप करनेका भी उपदेश करते हैं।

साधकोंको स्वामीजी निरन्तर यही उपदेश किया करते हैं कि ब्रह्म ही सत्य है और जगत मिथ्या है—ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या—और इसीलिए जीवको शरीर और मनसे परे रहकर आत्म-अनुसन्धान करते रहने चाहिए तथा सांसारिक क्रियाओंके साथ साक्षि द्रष्टाका सा ही सम्बन्ध बनाये रहना चाहिए। "अहं भावका लोपकर उस एकमें मिल जाना ही मनुष्य जीवनकी सबसे बड़ी सफलता है," यही विचार स्वामीजी सब लोगोंके अन्दर भरते रहते हैं।

मायावादके सिद्धान्तको स्वामीजी स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि ब्रह्मसे ही मायाकी उत्पत्ति हुई है, जो सबको नचाती रहती है, तथा जीवको भ्रममें डाले रहती है। स्वामीजी वेदान्त वर्णित 'ईश्वर तटस्थ लक्षण" को मानते हैं तथा 'विवर्त्तवाद और अजातिवाद' का पक्ष समर्थन करते हैं। वेदान्तके पक्षसिद्धान्तोंकी ओर उनका ध्यान सदा रहता है। उपनिषदोंके ये कथन कि 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' तथा 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' सदा स्वामीजीके ध्यानमें रहते हैं। स्वामीजी ब्रह्मको हस्तामलकवत् समझते हैं। उनका कहना है कि कोई भी मानव प्राणी, जिसके अन्दर थोड़ी भी आत्म ज्ञान प्राप्त करनेका अभिलाषा होगी, साधारण प्रयत्नसे भी उसको जान सकता है।

स्वामीजीके अन्दर कितनी सहिष्णुता और कितनी उदारताके दर्शन हमें होते हैं जब वह कहते हैं कि भगवानके नाम, रूप, आकारादिपर ध्यान न देकर केवल शुद्ध हृदयसे उनको भजो। 'प्रेम तें प्रकट होहिं भगवाना'—स्वामीजीका शिक्षाओंका सार है और यह प्रेम और भक्ति किसी विशेष भाषा एवं स्थानकी बपौती नहीं है। वह कहां नहीं है, और क्या नहीं समझता ?

स्वामीजीका कहना है कि हमें आसन प्राणायामका अभ्यास कर शरीरको पुष्ट और स्फूर्तिमय बनाना चाहिए। स्वामीजीके अनुसार ज्ञान योगको प्रधानता देनी चाहिए एवं भक्ति, कर्म और राजयोगका उसमें मिश्रण करना चाहिए ताकि ज्ञानकी प्राप्ति अतिशीघ्र हो, किन्तु ध्यानमें जैसे-जैसे सफलता मिलती जाय वैसे-वैसे कर्मका परित्याग करते जाना चाहिए। इसीलिए प्रारम्भमें स्वामीजी कर्मयोगके लिए अधिक और ध्यान योगके लिए कम जोर देते हैं। एक शब्दमें यदि कहना चाहें तो कह सकते हैं कि प्रत्येक प्राणीके प्रति स्नेहका भाव रखना स्वामीजीको अत्यन्त प्रिय लगता है और वह इसीका सबको उपदेश करते हैं।

जैसा ऊपर बतलाया गया है स्वामीजी सृष्टिके अणु-अणुमें सर्वत्र ब्रह्मको ही देखते हैं। वह चाहते हैं कि सर्वत्र ब्रह्म और केवल ब्रह्मका ही अनुभव किया जाय, सबको आत्ममय समझा जाय। साधारणतया आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिए जो लोग साधनाएं करते हैं उनको

प्रारम्भमें कठिनाइयोंका अनुभव करना पड़ता है। उनका चपल मन उनको उस साधनामें दृढ़ नहीं होने देता। कुछ दूर चलकर उनका मन ऊब जाता है और वह अपनी यात्राको पूरा किये बिना ही फिसल जाते हैं। स्वामीजी इन बातोंको समझकर ही लोगोंको उनके अनुरूप उनकी प्रकृतिके अनुसार साधनाका निर्देष करते हैं।

निर्वाण, कैवल्य या आत्मज्ञान प्राप्तिके उद्देश्यसे जो चलता है उसको पग-पगपर अनेकानेक कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं। भगवान बुद्धको कितनी जबर्दस्त साधनाके बाद अपने लक्ष्य तक पहुंचनेका अवसर मिला था। तपस्या साधारण वस्तु नहीं है। मनको, शरीरको इन्द्रियोंको सुखा डालना पड़ता है, युगोंतक अपनेको उसमें लगाना पड़ता है और तब जाकर कहीं सिद्धि प्राप्त होती है। किन्तु आज दिन लोगोंके पास न इतने साधन हैं, न इतनी दृढ़ इच्छा है और न इतना समय ही है। इस बातको ध्यानमें रखकर स्वामीजीने ऐसी सरल समयोपयोगी और शीघ्र फल-दायक विधियोंका प्रचार किया है जो प्रत्येक व्यक्तिके लिए उपयुक्त हैं। इनमें प्रमुख चीज आध्यात्मिक दैनन्दिनी है। साधक प्रतिदिन अपनी क्रियाओंको इसमें लिखते जाते हैं और क्रमशः उनको विकसित कर त्रुटियोंको दूर कर उन्नति करते जाते हैं। न किसी प्रकारकी विशेष तपस्याकी जरूरत है और न अधिक साधनाकी। जीवन-यापनके लिए आप अपना काम भी करते जाइये और साथ ही आत्म ज्ञानके प्राप्त्यर्थ साधनामें लगे रहिये।

स्वामीजी अपने जीवनसे, अपने कार्य-क्रमसे, तौर-तरीकेसे हमारे सामने उदाहरण पैदा करते हैं। उनका जीवन ही हमारे लिए आदर्श है। स्वामीजी नियमोंका अधिक उपदेश न कर स्वयं उनका पालन करते हैं ताकि लोग उनका अनुकरण कर सिद्धि प्राप्त कर सकें और यही सबसे बड़ी चीज है। स्वामीजीका कहना है कि एक ही नियमका पालन करना हजार नियमोंके ज्ञान प्राप्त करनेसे कहीं अच्छा है। आदमीको काम करना चाहिए, बेकार न बैठना चाहिए। इस सिद्धान्तके अनुसार स्वामीजी स्वयंही दिन रात किसी न किसी काममें लगे रहते हैं, आश्रम वासियोंको भी अनेक कार्योंमें लगाये रखते हैं। किसीको किसी प्रकारकी साधनाका क्रम पूरा करनेके लिए स्वामीजी कहते हैं, तो किसीको किसी प्रकारकी। उद्देश्य एक ही है—साधकको सिद्धि प्राप्ति होनी चाहिए।

* * * *

जीवनका उद्देश्य क्या है? यह बड़ा विचित्र प्रश्न है। सरलता पूर्वक इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता। अपने-अपने दृष्टिकोणसे सभी लोग इसपर विचार करतेहैं। कोई कुछ उत्तर देता है, कोई कुछ। वास्तवमें देखा जाय तो सबके उत्तरका आशय एक ही है—अपना भला करे और साथ ही संसारका भी भला करे अर्थात् स्वार्थ और परार्थ दोनोंकी ओर ध्यान दे। ऊपर-ऊपरसे देखनेसे यहां विरोधाभास होता है; किन्तु वस्तुत ऐसी बात है नहीं। स्वार्थके इस 'स्व'

को आप इहलौकिक जामा न पहनाकर पारलौकिक जामा पहनाइए तो पता चलेगा कि दोनों एक ही वस्तुके दो रूप हैं—अभिन्न और एक।

ब्रह्मकी सत्ता सर्वत्र है। सबमें ब्रह्म भास रहा है। अतएव जो व्यक्ति आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है उसकी दृष्टिमें 'क और ख' में कोई अन्तर नहीं हो सकता। इसलिए किसी दूसरेकी हितकामना स्वयं आपकी ही हितकामना होगी। इसीके आधारपर शास्त्रोंका कथन है कि धर्मका ज्ञाता वही है जो सबकी हितकामना करे और सबके हितमें लगा रहे।' गोस्वामीजीने स्पष्ट कहा है—'परहित सरिस धरम नहिं भाई।' धर्म वह चीज है जो हमें अपने लक्ष्य तक पहुचा दे अर्थात् आत्म ज्ञान प्राप्त करनेमें सहायक हो। धर्मका उद्देश्य यही है, अभिप्राय यही है। इसके अतिरिक्त धर्मकी कोई आवश्यकता नहीं। तो, हम देखते हैं कि परहित ही धर्म है और धर्मसे ही हम अपने लक्ष्यपर पहुचते हैं अर्थात् परहित ही हमें अपने लक्ष्य तक पहुचनेमें सहायता प्रदान करता है। लक्ष्यपर पहुच जाना ही जीवनका एक मात्र उद्देश्य है और इस उद्देश्यका साधन है परहित। ऊपर जो प्रश्न उठाया गया था कि जीवनका उद्देश्य क्या है वह स्पष्ट हो गया। दूसरोंका हित, जिसमें 'स्व' भी सन्निविष्ट है, हमारे जीवनका एकमात्र उद्देश्य है।

इसीलिए स्वामीजी उन सभी लोगोंको, जो उनके सम्पर्कमें आते हैं, सदा निष्काम और निस्स्वार्थ सेवाका उपदेश किया करते हैं।

इसकी प्रेरणा अपने भक्त, शिष्यों और अन्य लोगोंको स्वामीजी अपने जीवनसे दिया करते हैं। जीवनके क्षण-क्षणमें स्वामी जी दूसरोंका हित किया करते हैं। उनके सामने एक मात्र यही काम है कि लोगोंको अपने आचरणमें दिखावें कि उन्हें किस प्रकार इस संसारमें रहते हुए भी अपने उद्देश्यमें लगे रहना चाहिए।

इस परहित चिन्तनके उदाहरण हम स्वामीजीके जीवनमें बाल्य-कालसे ही पाते हैं। बाल्यकालसे लेकर जितने दिन तक स्वामी जी गृहस्थाश्रममें रहे सदा दूसरोंकी सेवा-सहायता करते रहे। इसीमें उनको आनन्द मिलता था। किन्तु वह हित इहलौकिक था। पीछे जब स्वामीजीने गृहस्थ धर्मका परित्याग कर दिया तो वह अपनी साधनाओं और यौगिक क्रियाओंमें लगे रहे और इस प्रकार संसारसे एक प्रकारसे अलग हो गये। लेकिन स्वामीजीके अन्दर दूसरोंकी सेवा-सहायता और उनकी भलाईका जो भाव था वह पूर्ववत् बना रहा। स्वर्गाश्रममें रहते समय अस्पताल खोलकर स्वामीजीने न जाने कितने साधुओं और गृहस्थोंकी सेवा इस तरह की। किन्तु स्वामीजीके ये दिन अधिकतर एकान्तके थे, स्वामीजीके समीप और सम्पर्कमें जो लोग आ पड़ते थे उनको ही इसका लाभ होता था। दूरस्थ प्रदेशोंमें रहनेवाले लोग इस प्रकारकी सहायतासे वंचित थे। इसके अतिरिक्त स्वामीजी किसीको शिष्य भी नहीं बनाते थे। जो लोग आध्यात्मिक प्रवृत्तिके होते थे वे स्वामीजीके पास जाते और उनसे प्रार्थना करते

कि स्वामी जी हमें शिष्य बना लीजिये और हमें ज्ञान दान दीजिये। पर उन दिनों स्वामीजी इस प्रकारकी प्रार्थनाए स्वीकार न करते। उनका यही उत्तर होता कि हमारे पास इस प्रकारकी सुविधाए नहीं हैं कि आपको रखकर कुछ सिखाया और बताया जा सके। लेकिन इतना अवश्य था कि स्वामीजी दूर रहकर भी सच्चे अभिलाषियों और साधकोंका पथ प्रदर्शन पत्रादिके द्वारा कर दिया करते थे। अपने साथ किसीको रखते नहीं थे और न किसीको शिष्य ही बनाते थे।

परन्तु आगे चल कर स्वामीजीने देखा कि ससार आज कल जिस प्रकार माया और जड़वादके चक्करमें पड़ गया है उससे इसको निकालना चाहिए अन्यथा यह और भी नीचे गिरता जायगा। इस कार्यके लिए कुछ ऐसे कर्मठ और समर्थ साधुओंकी आवश्यकता थी जो ऐसी दुरवस्थाको दूर कर पुन भारतीय सस्कृति और सभ्यताका प्रचार कर पश्चिमके जड़वादको दूर करे और लोगोंकी आँखें खोलें। इस आवश्यकताकी पूर्तिके लिए स्वामीजीको विवश होकर शिष्य ग्रहण करना पड़ा, जिससे वह साधु ,सन्यासियोंका एक ऐसा दल सघटित कर सकें, जो देश विदेशमें आत्मवादका प्रचार कर सके और जड़वादकी व्यर्थताको लोगोंके सामने रख दे। यही कारण था कि स्वामीजीने १९३५ में दिव्य जीवन सघकी स्थापना की।

पहले साधुओंका कोई सघटन नहीं था। वे स्वतन्त्र रूपसे रहते और मनमाने ढङ्गसे कार्य करते। कितने तो गैरिक वस्त्र धारण

पर यों ही सन्यासी बन गये थे। स्वामीजीने देखा कि यह चीज जहां उस ऊंची परम्पराका अपमान करती है जिसके प्रतीक सन्यासी लोग हैं वहां संसारके लिए भार स्वरूप भी है। अतएव उन्होंने सन्यासियोंको शिक्षित और लोक हितकी भावनासे पूर्ण बनाना चाहा। और इसमें सन्देह नहीं कि स्वामीजीको इस कार्यमें आशातीत सफलता मिली। *क्या आजका साधुसमाज वैसा ही है जैसा कुछ दिन पूर्व था?* स्पष्टतः स्वामीजीका असर पड़ा है। और तबसे स्वामीजी निरन्तर इस प्रकारके सघटनके लिये प्रयत्नशील हैं। स्वामीजीका विश्वास है, जो सत्य ही है, कि केवल साधु सन्यासी ही अपने सघटित प्रयत्नसे ससारमें सुख और शान्तिकी स्थापना कर सकते हैं।

८

स्वामीजी——उपदेशक और लेखकके रूपमें

स्वामीजी सन्त हैं। सन्तोंके मनमें सदा परोपकारका भाव रहता है। कहा है—परोपकाराय सता विभूतय । और फिर स्वामीजीमें लड़कपनसे ही दूसरोंके हित-साधनका भाव रहा है, अतएव यह निश्चित था कि स्वामीजी अपनी साधनाओंके अनुभव बतलाकर दूसरोंके पथ प्रशस्त करते। यही कारण है कि स्वामीजीने अपने अनुभवोंको लिपिबद्ध करते रहनेकी कोशिश की है। जहा कोई नया प्रकाश आपको मिला आपने उसे तुरन्त लिपिबद्ध किया। स्वामीजी पाच छ कापिया एक साथ रखते हैं और जहा जिस अवसरपर जिस प्रकारका प्रकाश मिलता है वहा उसी क्षण निर्दिष्ट कापीमें उसको अकित कर लेते हैं। बहुत प्रारम्भमें यह क्रम-चला और आज तक उसी रूपमें चला जा रहा है।

ऊपर एक जगह कहा जा चुका है कि स्वामीजी को अपनी साधनाओंके प्रारम्भिक दिनोंमें किस प्रकार कागजके अभावमें ऋषिकेश

थी सदर्नोपरसे कूड़ेकी टेरमेंसे कागज निकालकर काममें लाना पड़ा है और किस प्रकार लिफाफोंके भीतरके साफ भागका उन्होंने उपयोग किया है। आज भी स्वामीजीके पास उन कागजोंकी बनी कापियां हम देख सकते हैं। इससे ही इस बातका अनुमान किया जा सकता है कि स्वामीजीको अपनी साधनाओंके बीच भी लोक हितका कितना ध्यान रहता है। हम यहां स्वामीजीकी रचनाओं और उनके उपदेशोंपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा करेंगे।

स्वामीजी द्वारा लिखी गयी पुस्तकोंकी संख्या ६० से ऊपर है। है। इन पुस्तकोंको लिखते समय स्वामीजी का ऐसा उद्देश्य मालूम पड़ता है कि जो कुछ भी विचार उनके दिमागमें आते रहते हैं वे शीघ्रसे शीघ्र जनताके लाभके लिए उसके पास पहुचते रहें। स्वामीजी इस मामलेमें तनिक भी शिथिलता नहीं करते। स्वामीजी चाहते हैं कि मनसे भी अधिक वेगशाली शक्ति द्वारा उनकी रचनाएं और उनके विचार उस जगह पहुच जाय जहां अविद्या, अज्ञान और अन्धकारका साम्राज्य है। अधिकसे अधिक काम करना स्वामीजीका उद्देश्य रहता है। इसलिए स्वामीजी कहा करते हैं कि ४० घण्टेके दिन होते तो कितना अच्छा होता।

सन् १९२४ में स्वामीजीने सन्यासाश्रममें प्रवेश किया। उस समय आप अपनी यौगिक साधनाओंके साथ साथ चिकित्साका काम भी करते रहे और जो कुछ समय मिल जाता था उसका उपयोग आप

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंके लिए लेख लिखनेमें करते रहे। १९२६की बात है; एक भक्त जन आये और स्वामीजीको पांच रुपये देते हुए बोले—'स्वामीजी मैं चाहता हूं कि आप इन रुपयोंका उपयोग अपने लिए दूध लेनेमें करें।' यह उस समयकी बात है जब स्वामीजीको आत्म-ज्ञान प्राप्त हुआ था। उस अवस्थाको प्राप्त करनेके बाद स्वामीजी चाहते थे कि जितना जल्द हो सके संसारको इसका रहस्य समझाया जाय। लेकिन कठिनाई यह थी कि उसको किया किस प्रकार जाय। इसलिए वे पांच रुपये स्वामीजीके पास सयोगसे पहुंच गये। उनका उपयोग स्वामीजीने एक विज्ञप्ति छपवानेमें किया जो लोगोंमें निःशुल्क वितरित की गयी। सन्यासाश्रममें आनेके बाद स्वामीजीकी यह प्रथम रचना थी, जो छपी। उसके बाद तो न जानें कितनी रचनाएं स्वामीजीकी छपी हैं। तबसे अब तक स्वामीजीने बहुत सी पुस्तकें, पुस्तिकाएं और लेखादि लिखे हैं और वे सभी प्रकाशित हुए हैं। स्वामीजीकी आज तककी मुद्रित रचनाओंकी पृष्ठ सख्या लगभग ४० सहस्र हो गयी है। फिर भी उनको बहुत लिखना है।

प्रारम्भिक दिनोंमें स्वामीजीको अनेक कठिनाइयां उठानी पड़ीं। जब भी आपको कागज मिल जाय और टिकट मिल जाय आप तुरन्त पत्र-पत्रिकाओंके लिए लेख भेजते। स्वतंत्र पत्रकारको ही इस बातका पता होता है कि शुरू शुरूमें उसे अपना लेख छपवानेमें कितनी कठिनाई होती है। स्वामीजी इस मामलेमें अच्छे रहे। उस समय तक आप

प्रसिद्ध नहीं हुए थे। फिर भी आपके लेख प्रसिद्ध पत्रिकाओंमें अच्छा स्थान पाने लगे। स्वामीजीके लेखोंमें जो तेज था, जो निर्भीकता और सरलता थी एवं आपके शब्दोंमें जो आध्यात्मिकता झलकती रहती वह संपादकोंको प्रभावित किये बिना न रहती। पीछे चलकर न जाने कितनी पत्रिकाओंके सम्पादक आग्रह कर नियमित रूपसे स्वामीजीसे लेख मंगाने लगे। आज दिन भी स्वामीजी इन पत्रिकाओंके लिए लेखादि भेजते रहते हैं।

धर्म और तत्त्वज्ञानके विद्यार्थियोंको भिन्न भिन्न पुस्तकोंके पढ़नेसे शान्ति नहीं मिलती। पुस्तकालयोंमें बैठकर वह लोग पुस्तकोंके पृष्ठ पर पृष्ठ उलटते रहते हैं किन्तु अन्तमें इन पुस्तकोंसे जो ज्ञान प्राप्त होता है वह किसी प्रकारकी शान्ति देनेके स्थान पर उनके मनको और भी अशान्त और उद्वेलित कर देता है। पुस्तकों द्वारा प्राप्त ज्ञान उनके लिए भारस्वरूप हो जाता है।

स्वामीजीने इसको अनुभव किया। परिणाम स्वरूप अपने ज्ञान और आध्यात्मिक अनुभवोंके आधारपर आपने भक्ति, योग, वेदान्तादि पर स्वयं तो पुस्तकें लिखी हीं साथ ही ऋषियों द्वारा लिखित ग्रन्थोंके समयोपयोगी भाष्य भी प्रकाशित किये। इन पुस्तकोंमें प्रयुक्त भाषा इतनी स्पष्ट और सरल है कि भाषाका साधारण ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी इनसे लाभ उठा सकता है। स्वामीजीने कभी इस बातकी चेष्टा न की कि दार्शनिकोंकी अस्पष्ट और गोलमाल भाषाका प्रयोग किया

जाय, जिसमें लोग विषयको सुलझानेमें अपना समय खपा दें और फिर भी तत्व तक न पहुचें। उद्देश्य यह था भी तो नहीं।

स्वामीजीकी रचनाओंको देखने वाले व्यक्तिको यह बात तुरन्त मालूम पड़ जायगी कि आपने विषयको स्पष्ट करने तथा बोधगम्य बनानेके उद्देश्यसे योगके विभिन्न अंगोंका समावेश प्रायः अपनी सभी पुस्तकोंमें किया है। भक्तियोगपर लिखी गयी स्वामीजीकी किसी पुस्तकका स्वाध्याय करते समय भक्त इस बातको देखता है कि स्वामीजीने भक्तिके अतिरिक्त राज, कर्म और वेदान्त योगकी भी बातें उसमें रखी हैं। इस प्रकार स्वामीजी ग्रन्थ विशेषको सर्वजनोपयोगी बनानेका सदा ध्यान रखते हैं। असलमें कहा जाय तो स्वामीजीके उपदेश सार्वभौमिक होते हैं, उनमें किसी प्रकारकी सकीर्णता नहीं रहती। यही कारण है कि अन्य धर्मावलम्बी भी स्वामीजीके पास ज्ञान प्राप्त्यर्थ आते रहते हैं। इन पुस्तकोंकी रचना करते समय तथा प्राप्त ज्ञानका प्रचार करते समय स्वामीजीके सामने एक ही उद्देश्य दिखायी देता है; वह यह कि, प्राणिमात्र सुख और शान्तिका अनुभव करे।

इसी उद्देश्यसे प्रेरित होकर स्वामीजी उन पत्रोंमें भी लेखादि भेजते रहते हैं जो विज्ञान, राजनीति, सेक्स आदि से ही सम्बन्ध रखते हैं। नास्तिकको तो स्वामीजी अपनी रचनाएं अवश्य ही भेंट करते हैं। स्वामीजी चाहते हैं कि सभी लोग भगवदाराधनके पथपर अग्रसर होकर अपने जीवनको सफल करें। पत्र पत्रिकाओंमें लिखनेका अभि-

प्रय यही है कि इनको पढ़कर नास्तिक आस्तिक बनें और भक्त एवं साधक अपनी साधनामें आगे बढ़ें और इनसे प्रकाश प्राप्त करें।

स्वामीजीके लेखों और भाषणोंने भारतमें आध्यात्मिक चेतनताकी लहर तो प्रवाहित कर ही दी है, भारतके बाहरके देशोंमें भी, जैसे अफ्रिका, यूरोप आदिमें इस विषयकी काफी चर्चा हो चली है। सब धर्मोंमें समान विश्वास और सबकी अच्छाइयोंको ग्रहण करनेकी प्रवृत्तिने स्वामीजीके विषय स्पष्टीकरणके ढगको एसा बना दिया है कि पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण कहींका भी आदमी हो, हिन्दू अथवा हिन्देतर किसी भी जातिका हो समान रूपसे लाभ उठाता है।

स्वामीजीके उपदेश

संक्षेपमें हम स्वामीजीके उपदेशोंको इस प्रकार रख सकते हैं। स्वामीजीकी सभी पुस्तकों, भाषणों और उपदेशोंका सार इनको समझना चाहिए।

भारत वह पवित्र भूमि है जहां अगणित ऋषियों, मुनियों, योगियों और सन्तोंने जन्म-ग्रहण किये हैं। भगवानने भी इसी पावन भूमिमें अवतार लिया। नानक, बुद्ध, शंकर, रामानुज जैसे सन्तों और मनीषियोंको उत्पन्न करनेका श्रेय भारतको ही है।

भारतको गुरु गोविन्द सिंह और शिवाजी पर गर्व है। भोज और विक्रमादित्य, शंकर और कबीर, वाल्मीकि और कालीदास, राम और कृष्णके कारण आज भी भारतका मस्तक ऊंचा है। भारतभूमि

कितनी पावन है, कितनी महान है। आज भी अयोध्या और वृन्दा-वनकी भूमिके रजकण हमारे हृदयोंको पवित्र और उदार बनाते हैं। ईसाको भी भारतीय योगियोंकी शरण लेनी पड़ी थी। तब जाकर वहीं वह हिन्दू संस्कृतिके आधारपर पश्चिममें नये युगकी सृष्टि कर सके।

भारतीयों जैसी सहिष्णुता संसारके किसी भी देशके लोगोंमें नहीं है। किसका हृदय इतना विशाल और उदार है? सभी जातियों और धर्मोंके लोगोंको यहाँ स्थान मिल जाता है। हिन्दू धर्म सृष्टिके आदि कालसे चला आता है। संसारके समस्त धर्मोंकी उत्पत्ति हिन्दू धर्मसे ही हुई है। हमारे धर्मशास्त्र संसारमें सबसे प्राचीन हैं।

आजके जड़वादी विश्वमें हिन्दू संस्कृति और सभ्यताको बुरे दिन देखने पड़ रहे हैं। प्राचीन कालमें यह समुन्नत थी। यूनानियों और रोमनोंने संस्कृति और सभ्यता यहींसे सीखी। उन्होंने हिन्दू विचारोंको आत्मसात कर लिया और तब जाकर कहीं आगे बढ़े। नैतिक दृष्टिसे अपनी पुरातन संस्कृति और सभ्यताके कारण भारत आज भी जगद्गुरु बना हुआ है। आज दिन भी भारतमें ऋषियों और सन्तोंका माहात्म्य है। उनके ही बलपर तो संसार टिका हुआ है। यह दूसरी बात है कि बिगड़े हुए वातावरणके कारण आज बहुतसे सन्त सर्वसाधारणसे अलग हो गये हैं।

हृदयकी विशालता, उदारता, चरित्रकी महानता, नम्रता, दान-शीलता, दया, आतिथ्य, धर्मभीरुता, क्षमाशीलता, एवं परदुःख कातरता

हिन्दुओंके सहज गुण हैं। रास्तेमें पड़े हुए भूखे रूखे व्यक्तिको देख कर हिन्दमात्रका हृदय करुणार्द्र हो उठता है और वह उसकी सहायताके लिए दौड़ पड़ता है। भारतेतर देशोंमें यह बात नहीं पायी जा सकती।

पाश्चात्य देशोंके लोग भी आर्य सन्तान हैं। किन्तु वे अपनेको भूल गये हैं। व आत्मविस्मृत हो गये हैं, इसीलिए अपने पूर्वजोंकी बातें भी भूल गये हैं। लेकिन तथ्य तथ्य ही है। वे आर्य सन्तान हैं, इसको इतिहासके पृष्ठोंसे *मिटाया नहीं जा सकता। उन्हें इसी* दृष्टिसे भारतको देखना चाहिए। भारत उनका हित करनेके लिए सदा उद्यत है।

अगणित अत्याचारों, कठिनाइयों, युद्धों और नृशंसताओंसे गुजरनेके बाद भी हिन्दू आज तक जीवित हैं। इसका क्या कारण है? निश्चय ही किसी अज्ञात शक्तिने उनकी रक्षा की है। आगे भी वही शक्ति उनको बचाती रहेगी।

मनुष्यको धीर बनना चाहिए। आपदाओंके आते रहनेपर भी उसे अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिए। अपने पथपर आगे बढ़ते रहना ही उनका परम पुरुषार्थ है। इससे ही सफलता मिलती है। बहुत कहने सुननेसे कुछ लाभ नहीं। क्रियाशीलता ही सफलताकी कुंजी है।

कष्ट सहिष्णुताका जीवन अपनाना चाहिए। मानापमान, दुःख दैन्यका खयाल न करना चाहिए। शारीरिक श्रम करना चाहिए।

शरीरको सुपुष्ट और सुन्दर बनानेके लिए आसन, व्यायाम और प्राणायामका सहारा लेना श्रेयस्कर है। सरल, सादा जीवन व्यतीत करना चाहिए। विवाहित व्यक्तिको भी जहा तक हो ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। वीर्यकी रक्षा हर समय और हर दिशामें श्रेष्ठ है। इन्द्रिय दमनसे बढ़कर कोई कार्य नहीं।

अपने दायित्वका सदा खयाल रखना चाहिए। मुसीबतोंसे घबरानेकी जगह उनका सामना करनेके लिए तैयार रहना चाहिए। कभी, किसी भी अवस्थामें विचलित और विक्षिप्त न होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है कि वह सदा साहस, शौर्य और श्री से पूर्ण रहे। भोग विलास और आरामतलबीसे बच कर जहा तक हो कष्टमय जीवनको अपनाये। नित्य ध्यान-धारणा करनी चाहिए, जिससे आत्म-ज्ञान प्राप्त हो सके। आज तक जितनी भी महानात्माएं हुई हैं सभीको सत्य और न्यायके लिए कुरबानियां करनी पड़ी हैं। तभी उनको सफलता मिली है, और तभी हम उन्हे श्रद्धा और आदरके साथ स्मरण करते हैं।

आज दिन वर्णाश्रम धर्म केवल एक कहनेकी चीज रह गयी है। हिन्दू धर्मकी भव्य इमारतका पुन निर्माण करना होगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी अपने आदर्शोंसे गिर गये हैं। उन्होंने अपने कर्तव्यको भुला दिया है। इसीसे आज हिन्दू जातिका अध.पतन हो गया है।

अस्पृश्यता एक अभिशाप है। मानवमात्र, नहीं, इस सृष्टिमें चर अचर जो कुछ भी देख पड़ता है वह सभी जब उस प्रभुसे प्रसूत है तो किसीको स्पृश्य और किसीको अस्पृश्य कैसे कहा जा सकता है। अगर कोई अस्पृश्य तो उनको ही कहना चाहिए जो अहंकारके शिकार होकर इस शरीरको ही सब कुछ समझता है। दुनियाकी सारी बुराइयोंमें लीन रहने वाले अधम द्विजको स्पृश्य और श्रेष्ठ चरित्रवाले, सेवाभावसे भरे हुए द्विजेतर जातियोंको अस्पृश्य समझना कहाँका न्याय है?

सबसे मिलो जुलो, सबको ईश्वरमय देखो। अस्पृश्यताके भावको यदि शीघ्र ही दूर न कर दिया जायगा तो हिन्दू जाति कुछ ही दिनोंमें समाप्त हो जायगी। कितनी घोर विडम्बना है कि उसी व्यक्तिको अस्पृश्य कहकर आप उससे घृणा करते हो और जब वह दूसरे धर्ममें प्रविष्ट होकर एक अफसर हो जाता है तो आप उससे हाथ मिलानेमें गर्वका अनुभव करते हो। क्या उसकी काया बदल गयी? वह तो अब भी वही है।

जिस भारतने संसारको ज्ञान दिया, जिसने अगणित ऋषि महर्षि पैदा किये उसके बच्चे आज अशिक्षित, निरक्षर और अज्ञानी हैं। शिक्षित लोगोंका यह कर्तव्य है कि वे अवकाशके समय गाँवोंमें जाकर निरक्षर व्यक्तियोंको साक्षर और शिक्षित करनेका उद्योग करें। सब लोगों को अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार इस कार्यमें योग देना चाहिए।

राष्ट्रीय आधार पर शिक्षणालयोंकी स्थापना होनी चाहिए। हमारे बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षा सही ढंगपर होनी चाहिए। इसके बिना राष्ट्रीयता और जातीयताका विकास सम्भव नहीं। सच्ची शिक्षा वही है जो मनुष्यको विकासके पथका अनुसरण करनेके लिए प्रेरित करे, जो उसके चरित्रको ऊंचा उठाये, उसमें दैहिक, दैविक और भौतिक सब प्रकारकी विघ्न-बाधाओंको दूर कर स्वतन्त्रताका भाव भरे, उसे ईमानदार बनाये तथा आत्मज्ञान प्राप्त करनेकी प्रेरणा दे।

वैवाहिक आदि प्रसंगोंमें अनावश्यक रूपसे रुपयोंका व्यय होता है; यह नहीं होना चाहिए। इस प्रकार रुपये बचाकर राष्ट्र-निर्माणके कार्योंमें उसे व्यय करना चाहिए। धनका यही सच्चा उपयोग है। पुरातन कालसे चले आते हुए सामाजिक नियमादिके गुलाम न बनो, ये राष्ट्रोन्नतिके मार्गमें बाधक हैं। सदा देशी वस्तुओंका व्यवहार करना चाहिए। ग्राम्य उद्योग व्यवसायोंको प्रोत्साहन देना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। इससे हमारी निर्धनता दूर होगी। आर्थिक मुहताजी सबसे बड़ा दोष है।

आजकलके वातावरणमें योग वेदान्तादिकी साधनाएं उतनी सरल और सुगम नहीं हैं। इसलिए कर्मयोगका ही अवलम्बन सबके लिए श्रेयस्कर है। निःस्वार्थ सेवासे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। सबको आत्मवत् समझना चाहिए और पूर्ण निष्ठा और एकाग्रताके साथ उनकी सेवा करनी चाहिए। सबके साथ प्रेमपूर्वक मधुर व्यवहार करना

मनुष्यका पहला कर्त्तव्य है। जीवनको सफल बनानेके लिए इससे बढ़-कर कोई भी चीज नहीं। केवल शोर मचाने और 'सेवा-सेवा' कह-नेसे कुछ नहीं होता। सच्चा प्रेम होना चाहिए। धीरे-धीरे ही किसी चीजका विकास होता है। घबड़ाना नहीं चाहिए। सन्तोंके जीवनका अध्ययन करना चाहिए। किसी गुरुके साथ रहकर पहले कुछ दिन तक ध्यान करना चाहिए। श्रद्धा भक्ति समन्वित गुरुकी सेवा करनी चाहिए। उनकी आज्ञाका तत्काल पालन करना चाहिए। आज्ञापालन ही सबसे बड़ा त्याग है। इससे गुरुके गुणोंका विकास अपनेमें होने लगता है। नेता बननेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। अगर सब लोग नेता ही बनने लगेंगे तो अनुसरण कौन करेगा? इससे सारा आन्दोलन ही चौपट हो जायगा। अपने गुणोंसे आदमी नेता बनता है न कि नेता बननेकी कोशिश करनेसे।

स्वामीजीकी रचनाएं

जैसा ऊपर बतलाया गया है स्वामीजीने भक्ति, योग, वेदान्त सभी विषयों पर सरल और बोधगम्य भाषामें पुस्तकें लिखी हैं। इनके अतिरिक्त स्वामीजीने प्राचीन ग्रन्थोंपर बहुत ही सरल और विशद टीकाएं लिखी हैं। ये पुस्तकें विभिन्न प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित हुई हैं और भारत तथा भारतके बाहर कई हजारकी संख्यामें बिक चुकी हैं। इन पुस्तकोंकी इतनी जोरदार मांग रहती है कि आजकल कई-कई पुस्तकोंके नये संस्करण कागजके अभावमें रोक देने

पड़े हैं। फिर भी जहां तक कागज़ मिलता है पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं और आत्मज्ञानकी बुभुक्षित जनताको पहुचायी जाती हैं। स्वामीजीका उद्देश्य रहता है कि ज्ञान-प्राप्तिसे कोई मनुष्य वंचित न रहे। एतदर्थ जहां तक हो सकता है स्वामीजी पत्र आदि लिखकर भी जिज्ञासुओंको तृप्त करते रहते हैं। नीचे हम स्वामीजीको लिखी हुई प्रकाशित पुस्तकोंकी एक तालिका देते हैं। ये पुस्तकें अंग्रेजीमें हैं—स्वामीजीने अंग्रेजीमें ही लिखा है। इनमें से बहुतोंके हिन्दी अनुवाद भी हो चुके हैं।

(१) प्रेक्टिस आव वेदान्त (*Piactice of Vedanta*), (२) प्रेक्टिकल लेसन्स इन योग (*Practical Lessons in Yoga*), (३) श्योर वेज़ फार सक्सेस इन लाइफ ऐण्ड गाड रियलाइज़ेशन (*Sure Ways for Success in Life & God Realisation*), (४) माइण्ड—इट्स मिस्ट्रीज ऐण्ड कण्ट्रोल (*Mind—Its Mysteries and Control*) दो भाग (५) प्रेक्टिस आव योग (*Prrctice of Yoga*), दो भाग (६) वेदान्त इन डेली लाइफ़ (*Vedanta in Daily Life*), (७) प्रेक्टिस आव कर्म योग (*Practice of Karma Yoga*), (८) फिलासोफी ऐण्ड मेडीटेशन आन ॐ (*Philasophy & Meditation on Om*), (९) टेन उपनिषद्स (*Ten Upanishads*), (१०) फिलासोफी ऐण्ड योग (*Philosophy & Yoga*), पद्यमें

(११) योग इन डेली लाइफ (*Yoga in Daily Life*); (१२) श्रीमद्भगवद्गीता (*Srimad Bhagwadgita*), गीतापर सुन्दर एवं विवेचनात्मक भाष्य,(१३) प्रैक्टिस आव भक्तियोग (*Practice of Bhakti Yoga*), (१४) ईजी स्टेप्स टु योग (*Easy Steps to Yoga*), (१५) लार्ड कृष्ण—हिज लीलाज़ एण्ड टीचिंग्स (*Lord Krishna—His Lilas & Teachings*), (१६) प्रिंसिपल उपनिषद्स (*Principal Upanishads*) दो भाग, प्रमुख उपनिषदोंपर भाष्य (१७) स्टोरीज फ्राम दि योगवाशिष्ठ (*Stories from the Yoga Vashishtha*), (१८) इन्सपायरिंग मेसेजेज़ (*Inspiring Messages*), (१९) फिलासोफिकल स्टोरीज़ (*Philosophical Stories*), (२०) ब्रह्मचर्य ड्रामा (*Brahmacharya Drama*), (२१) जेम्स आफ प्रेयर्स (*Gems of Prayers*), (२२) फैमिली डाक्टर (*Famils Doctor*), (२३)जपयोग (*Japa Yoga*) (२४) हठयोग (*Hatha Yoga*); (२५) स्टूडेण्ट्स सक्सेस इन लाइफ (*Students Success in Life*), (२६) हाऊ टु गेट वैराग्य (*How to Get Vairagya*), (२७) स्त्री धर्म (*Sthree Dharma*), (२८) साइन्स आव प्राणायाम (*Scince of Pranayam*) (२९) योग असन्स (*Yoga Asans*), (३०) लाइव्स आव सेण्ट्स (*Lives of Saints*); (३१) आनन्द लहरी (*Anand Lahari*), श्री शंकरकी आनन्द

लहरी पर भाष्य, (३२) भक्ति ऐण्ड सकीर्तन [*Bhakti & Sankirtan*), (३३) स्टोरीज फ्राम दि महाभारत (*Stories from the Mahabharat*), (३४) एफारिजम्स (*Aphorisms*), (३५) डिवाइन लाइफ-ड्रामा (*Divine Life Drama*), (३६) एसेन्स आव गीता इन पोएम्स (*Essence of Gita—in Poems*), (३७) एसेन्स आफ रामायण (*Essence of Ramayan*), (३८) इन्सपायरिंग सागस ऐण्ड कीर्तन (*Inspiring Songs & Kirtan*), (३९) लेक्चर्स ऑन योग ऐण्ड वेदान्त (*Lectures on Yoga & Vedanta*), (४०) समाधि योग (*Samadhi Yoga*), (४१) एसेन्स आव योग (*Essence of Yoga*), (४२) योगिक होम एक्सरसाइज़ेज़ (*Yogic Home Exercises*), (४३) कानवरसेशन इन योग (*Conversation in Yoga*), (४४) इन्सपायरिंग लेटर्स (*Inspiring Letters*), (४५) कुण्डलिनी योग (*Kundalini Yoga*), (४६) राजयोग पतजलि योगसूत्र (*Raj Yoga—Patanjali Yoga Sutras*), (४७) स्पिरिचुअल लेसन्स (*Spiritual Lessons*), दो भाग, (४८) स्तोत्ररत्नमाला (*Stotra Ratna Mala*), (४९) डायलग्स फ्राम उपनिषद्स (*Dialogues from Upanishads*) (५०) योग इन डेली लाइफ (*Yoga in Daily Life*), (५१)प्रैक्टिस आव ब्रह्मचर्य (*Practice of Brahmacharya*)

इनमें सभी पुस्तकें एकसे एक बढ़कर हैं। किन्तु प्रैक्टिस आव ब्रह्मचर्य तथा स्टुडेण्ट्स सक्सेस इन लाइफ युवकों और विद्यार्थियोंके लिए अनिवार्य हैं। विद्यार्थियों और युवकोंको ध्यानमें रखकर ही ये पुस्तकें लिखी गयी हैं।

इनके अतिरिक्त इधर स्वामीजीने 'ज्ञान-सूर्य ग्रन्थमाला' के नामसे छोटी छोटी पुस्तिकाएं लिखी हैं, जिनमेंसे १६ पुस्तिकाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। आजकल स्वामीजी व्यास कृत 'ब्रह्मसूत्र' अथवा 'वेदान्त सूत्र' का भाष्य कर रहे हैं, जो प्रायः समाप्त हो चुका है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि स्वामीजीने अपनी सभी पुस्तकें अंग्रेजीमें लिखी हैं। इनमेंसे बहुतोंका हिन्दी भाषान्तर भी हो चुका है। नीचे हम उन पुस्तकोंके नाम देते हैं जो हिन्दीमें प्रकाशित हो चुकी हैं—(१) योग आसन और अक्षय युवावस्था, (२) प्राणायाम और अनन्त शक्ति ; (३) जपयोग, (४) हठयोग, (५) वैराग्यके पथपर, (६) मन और उसका निग्रह, दो भाग ; (७) आध्यात्मिक शिक्षावली दो भाग, (८) भक्तियोग साधन, (९) प्रणव रहस्य, (१०) राजयोग, (११) नित्य जीवनमें योगाभ्यास, (१२) ब्रह्मचर्य नाटक (१३) दिव्य जीवन नाटक, (१४) ध्यान योग ; (१५) नारद भक्ति सूत्र।

इनके अतिरिक्त श्योर वेज फार सक्सेस इन लाइफ एण्ड गाड रियलाइज़ेशन (*Sure Ways for Success in Life & God*

Realisation) तथा प्रैक्टिस आव ब्रह्मचर्य (*Practice of Brahmachary*) का भी अनुवाद प्रारम्भ हो चुका है जो शीघ्र ही जनताके सामने उपस्थित किया जायगा।

'ज्ञान-सूर्य ग्रन्थमाला' की पुस्तिकाओंके हिन्दी प्रकाशनको भी व्यवस्था की गयी है। इस ग्रन्थमालाकी पहली पुस्तक 'उपनिषदोंका ज्ञान' प्रकाशित भी हो चुकी है। शेष भी जल्दी ही प्रकाशित होंगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामीजीने आजके पतित मानवको सही रास्ते पर लानेके लिए कितनी अथक चेष्टा की है। आप निरन्तर इसी कार्यमें लगे रहते हैं। आपकी सारी पुस्तकें, जो केवल प्रचारार्थ लिखी गयी हैं, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। काश हम मनुष्यमें मानवता भरनेका उद्योग हम सफल कर पाते।

९

दिव्य जीवन संघ—इसके बहुमुखी कार्य

आजके वैज्ञानिक युगमें, जब कि तर्क और विवेकका प्राधान्य हो गया है, लोग साधारणतया अन्धविश्वासोंसे बचना चाहते हैं और यह विचार व्यक्त किया करते हैं कि आजकी भौतिक और जड़वादी दुनियामें मानवको तभी शान्ति मिल सकती है जब वह पूर्ण स्थितप्रज्ञ और आत्मज्ञान प्राप्त गुरुकी शरणमें जाय। इस विचारके अनुसार ही दिव्य जीवन संघकी स्थापना हुई।

आपने प्रचार-कार्यके सिलसिलेमें स्वामीजी एक बार पंजाब गये हुए थे। वहां आपके कुछ भक्तोंने कहा कि एक ऐसी संस्था खड़ी कीजिये जो भक्तोंमें आध्यात्मिक तत्वोंको क्रमशः विकसित करे एवं जड़वादी संसारको अध्यात्म-पथपर लाये। अतः उनके अनुरोधको ध्यानमें रखकर स्वामीजीने एक संस्था संघटित की जिसका नाम 'डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसाइटी' पड़ा (१९३६)। कुछ ही दिनोंके

श्री विश्वनाथ मन्दिर, शिवानन्दाश्रम, ऋषिकेश

भीतर ट्रस्टने इतना जबर्दस्त काम किया कि स्वामीजीके तमाम भक्तों और प्रशंसकोंका ध्यान इसकी ओर आकर्षित हुआ। इन लोगोंने स्वामीजीसे निवेदन किया कि 'दिव्य जीवन-संघ' नामकी एक संस्था स्थापित कीजिये ताकि हम सभी लोग, जो आपके भक्त और शिष्य हैं, किसी विशेष अवसर पर एकत्र होकर एक दूसरेके अनुभवसे लाभ उठायें और सामूहिक रूपसे आपसे कुछ सीख सकें। फल स्वरूप 'दिव्य जीवन संघ' स्थापित किया गया। कुछ ही दिनोंमें संघकी शाखाएं भारत और भारतके बाहर कई स्थानोंमें खुलीं। यूरोपके कई स्थानोंमें, दक्षिण अफ्रिकामें और बर्मा, मलाया एवं सिंगापुरमें विशेष प्रचार हुआ।

दिव्य जीवन-संघके द्वारा ही स्वामीजीका प्रचार-कार्य चलता है। इसके आदर्श अत्यन्त ऊंचे हैं। स्वामीजीके प्रभावशाली नेतृत्वमें यह संघ काफी काम कर रहा है। संघकी प्रबन्ध समितिका इस दृष्टिसे संघटन और विस्तार हुआ है कि लोगोंमें अधिकसे अधिक मात्रामें सेवा, सहयोग और सहकारिताका भाव बढ़े एवं संघके उद्देश्योंका प्रचार हो। संघके सदस्योंको भलीभांति ज्ञान प्राप्त हो और वे अपनी साधनामें क्रमशः आगे बढ़ें इस उद्देश्यसे वर्षमें दो बार—बड़े दिन और ईस्टरमें—साधना सप्ताहका आयोजन होता है, जिसमें सभी लोग सम्मिलित रूपसे भाग लेते हैं। सामूहिक रूपसे जप, कीर्तन मंत्र लेखन, सभाषण, आसन, प्राणायाम, निःस्वार्थ सेवा आदि की

शिक्षा इस अवसर पर दी जाती है। प्रति वर्ष, ८ सितम्बरको, स्वामीजीके जन्म दिवसके उपलक्षमें भी इस प्रकारका आयोजन होता है। उस समय दूर दूरसे भक्त लोग स्वामीजीके प्रति भक्ति प्रकट करनेके उद्देश्यसे आते हैं और इन सब आयोजनोंमें भाग लेकर अपनी साधनाके सिलसिलेमें उत्पन्न कठिनाइयोंको दूर करते हैं। ऋषिकेशमें यह उत्सव बड़े पैमाने पर मनाया जाता है, किन्तु अन्य शाखाओंमें भी उत्सव अच्छे रूपपर होता है।

दिव्य जीवन संघने संसारके कोने-कोनेमें आध्यात्मिक चेतनताकी लहर प्रवाहित कर दी है। इसके द्वारा लोगोंमें अमरत्वकी भावना अधिकाधिक रूपमें पैदा हुई है। लोगोंके अन्दर नये विचार प्रवाह, नयी विचार-सरणिका आविर्भाव हुआ है, नये जीवनका संचार हुआ है एवं अहंभावका लोप हुआ है। इसके सार्वभौमिक सिद्धान्तों, आदर्शों और उद्देश्योंने सब जगहके लोगोंको अपनी ओर आकर्षित किया है। इसका एक प्रधान कारण यह है कि स्वामीजी आध्यात्मिक तत्वोंके विवेचन रूपी भ्रम जालमें साधकोंको न फंसाकर व्यावहारिक योगकी शिक्षा देते हैं, जिससे लोगोंको प्रत्यक्ष लाभ पहुंचता है।

ऋषिकेशके प्रधान आश्रममें स्वामीजीके साथ कुछ सन्यासी लोग रहते हैं जो उनके आदेशोंके अनुसार कार्य करते हैं। इस आश्रमको स्वामीजीके ही नामपर शिवानन्दाश्रम कहा जाने लगा है। आश्रम वासी सन्यासी लोग अभ्यागतोंके साथ अत्यन्त नम्र और सौम्य

व्यवहार रखते हैं। कुछ दिन तक यहांके वातावरणमें रहनेसे जो लाभ होता है वह पुस्तकोंसे नहीं होता। एक तो स्वामीजीके साथ रहना दूसरे उनके आदर्शोंके मूर्तिमान सन्यासियोंका सहवास। इससे अधिक लाभ पुस्तकीय ज्ञानसे थोड़े ही हो सकता है।

स्वय अपने चरित्रका उदाहरण पेशकर स्वामीजी आगत जनोंको योग वेदान्तादिकी शिक्षा देते हैं। नतीजा यह होता है कि लोगोंको तुरन्त ही अपनेमें परिवर्तन मालूम पड़ने लगता है। जो लोग शुरूमें छोटे छोटे काम करनेमें लज्जाका अनुभव करते हैं वे पीछे चलकर झाड़ू लगानेका कार्य करनेमें भी आनन्द और गौरवका अनुभव करते हैं। इस प्रकार लोगोंके दृष्टिकोणमें महान परिवर्तन उपस्थित हो जाता है। उनका हृदय दूसरोंके सुख-दुःखका अनुभव करने लगता है और उनकी सेवा और सहायताके लिए उनमें भाव उत्पन्न हो जाता है।

आनन्द कुटीर तथा ऋषिकेशके आस-पास अस्पतालोंकी काफी कमी है। परिणाम स्वरूप वहां रहनेवाले साधु सन्यासी तथा आसपासके गावोंमें रहनेवाली जनता औषधियोंके अभावमें बहुत दुःख पाती है। आनन्द कुटीरमें स्थापित औषधालय द्वारा इन समस्त लोगोंकी सेवा की जाती है। इस औषधालयका द्वार रोगियों और आर्त्तजनोंके लिए निरन्तर खुला रहता है।

आदर्श राष्ट्रीय प्रणालीपर लोगोंको आध्यात्मिक शिक्षा देनेके निमित्त स्वामीजीने संघकी ओरसे एक शिक्षणालय भी स्थापित किया

है। स्वामीजी इस पाठशालामें स्वयं जाकर छात्रोंको हर तरहकी शिक्षा देते हैं।

अभी हाल ही में यहां एक विश्वनाथ मन्दिर बना है, जो भक्तोंके पूजनादिके लिए एक उत्तम स्थान है। साथ ही सघकी ओरसे यहां एक क्षेत्र भी है जिसमें सन्यासियोंको मुफ्त भोजन दिया जाता है। और ये सारे कार्य दिव्य जीवन सघके द्वारा सचालित होते हैं। १९३६ के पहिले स्वामीजी किसीको शिष्यरूपमें स्वीकार न करते थे, किन्तु आवश्यकता समझ कर स्वामीजीने जब दिव्य जीवन सघकी स्थापना की तो शिष्य स्वीकार करने ही पड़े ताकि देशके कोने कोनेमें आध्यात्मिकताका प्रचार हो सके। आज हम जब देखते हैं कि छ सात वर्षोंम ही सघने कितना जबर्दस्त कार्य कर लिया तो हमें आश्चर्य होता है। किन्तु यह सब कार्य सघ इसीलिए कर पाता है कि उसकी पीठपर स्वामीजी जैसे महात्माका हाथ है।

दिव्य जीवन सघके अन्तगत ही, किन्तु उससे भिन्न और कई अर्थोंमें स्वतन्त्र एक और संस्था है—शिवानन्द प्रकाशन सघ। इस सघके द्वारा स्वामीजीकी पुस्तकोंका प्रकाशन होता है। सघके जिम्मे यही काम है कि जितना जल्द हो सके स्वामीजीकी रचनाओंको प्रकाशित कर जनता तक पहुचाये। पहिले स्वामीजीकी रचनाए अन्य प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित हुई थीं किन्तु उनके द्वारा स्वामीजीकी रचनाए सुलभताके साथ जनता तक न पहुच सकती थीं। अतएव

इस संघको स्थापित किया गया। केवल लागत मात्रपर जनता तक स्वामीजीकी रचनाओंको पहुंचाना संघके लिये ही सम्भव है, साधारण व्यावसायिक प्रकाशकोंके लिए नहीं। यही कारण है कि संघ बहुत जल्दी उन्नति कर गया है। इस संघकी एक शाखा कलकत्तेमें भी है, जो प्रधान शाखाके अन्तर्गत रहते हुए भी एक प्रकारसे स्वतन्त्र है।

दिव्य जीवन' (*Divine Life*) नामकी एक पत्रिका भी 'दिव्य जीवन संघ' की ओरसे प्रकाशित होती है। उसके द्वारा स्वामीजीकी शिक्षाओं और उपदेशोंका प्रचार सर्वसाधारणमें होता है। यह पत्रिका मासिक है और अंग्रेजीमें प्रकाशित होती है। इसके सम्पादक स्वयं स्वामीजी हैं।

दिव्य जीवन संघके यही सारे कार्य हैं। नीचे हम संघकी नियमावली देते हैं। उससे पाठकोंको संघके उद्देश्यों और नियमोंका सम्यक बोध होगा और वे संघकी महत्ताका अनुभव कर सकेंगे।

दिव्य जीवन-संघ

उद्देश्य और नियम—

१—लोगोंमें आध्यात्मिकताका प्रचार करनेके उद्देश्यसे—

(क) हिन्दू धर्म, दर्शन आदिका प्रचार करनेके लिए आध्यात्मिक साहित्यका निःशुल्क वितरण।

(ख) नाम जप और संकीर्तनको प्रोत्साहन देना तथा उसका आयोजन करना।

(ग) पुरातन कालीन ऋषियों, महर्षियों, सन्तों, योगियों आदिकी शिक्षाओंका प्रचार करना।

(घ) निम्न कार्योंके प्रचारके लिए केन्द्र खोलना और संस्थाएं स्थापित करना :—

(१) ब्रह्मचर्य, आसन, प्राणायाम आदिके द्वारा युवकोंका कायाकल्प कर उनको शक्तिशाली बनाना।

(२) लोगोंमें विश्व प्रेम और भ्रातृत्वका भाव उत्पन्न करना।

(३) भक्तों, महात्माओं, साधु सन्तों और जरूरत मन्दोंकी सेवा-कर उनका कष्ट हरना।

(४) कथा, सत्संग, कीर्तन आदिका आयोजन करना।

(५) प्रान्तोंके प्रमुख स्थानोंपर आध्यात्मिक सम्मेलनोंका आयोजन करना।

(६) जनताके हितके लिए विभिन्न स्थानोंपर पुस्तकालयोंकी स्थापना करना जिसमें धार्मिक ग्रन्थों और पत्र-पत्रिकाओंका बाहुल्य रहे।

(२) धार्मिक और आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखने वाले योग्य विद्यार्थियोंकी सब प्रकारसे सहायता करना।

(३) सर्व साधारणके लाभार्थ और विशेष कर गरीब जनताके लिए औषधालयोंकी स्थापना।

(४) संघके उद्देश्योंके प्रति सहानुभूति रखनेवाले तथा उसकी सहायता करनेवाले सज्जन-संघके सदस्य बन सकते हैं।

परिशिष्ट (क)

सतयुग	....	....	ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र
त्रेतायुग	....	....	वशिष्ठ, शक्ति, पराशर
द्वापरयुग	....	....	व्यास, शुकदेव
कलियुग	....	....	गोविन्द, शंकराचार्य

पद्मपाद | सुरेश्वराचार्य | हस्तामलक | त्रोटकाचार्य

सुरेश्वराचार्य

शृंगेरीमठ

|

स्वामी विश्वानन्द सरस्वती

|

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

(आनन्द कुटीर)

परिशिष्ट (ख)

१	श्री स्वामी कृष्णाश्रमजी	गंगोत्री
२	,, ,, तपोवनजी	उत्तरकाशी
३	,, नारायण स्वामीजी परमहंस	उत्तराखण्ड
४	,, स्वामी अवधूत चैतन्यानन्दजी....	ऋषिकेश
५	,, ,, विष्णुदेवानन्दजी	,,
६	,, ,, जयेन्द्र पुरीजी	काशी
७	,, ,, करपात्रीजी	,,
८	,, ,, अद्वैतानन्दजी	गुजरात
९	,, ,, शिवानन्दजी, गीता व्यास	,,
१०	,, उड़िया बाबाजी	वृन्दावन
११	,, हरिबाबाजी	बांदा
१२	,, मलयाल्म स्वामी गाल	येरपेडू
१३	,, रमण महर्षि	तिरुवन्नमलई
१४	,, अरविन्द	पाण्डेचेरी
१५	,, स्वामी शुधानन्द भारती	,,
१६	,, ,, रामदास	कान्हागढ़
१७	,, कृष्ण प्रेमी	उत्तर वृन्दावन
१८	,, साधु टी एल वस्वानी	हैदराबाद (सिन्ध)
१९	,, अवधूत स्वामी ब्रह्मेन्द्र सरस्वती	सेंदामलगाम
२०	,, स्वामी राजेश्वरानन्दजी	मद्रास
२१	,, मौनी स्वामी	कुर्तालम

परिशिष्ट (ग)

स्वामीजीके साधक और भक्त अपनी साधनाओंमें कठिनाइयाँ उपस्थित होनेपर प्रायः पत्र लिखकर स्वामीजीसे उनका समाधान पूछते रहते हैं। स्वामीजी उचित उत्तर देकर उनकी कठिनाइयोंको दूर किया करते हैं। कभी-कभी ये साधक और भक्त स्वामीजीके सम्बन्धमें प्राप्त अपने अनुभवों और भावनाओंका भी जिक्र किया करते हैं। ऐसे ही पत्रोंमेंसे कुछके चुने हुए अंश नीचे दिये जाते हैं। इनसे हमारे पाठकोंका मनोरञ्जन भी होगा और साथ ही ज्ञान-वृद्धि भी होगी।

* * * *

"१९४० के साधना सप्ताहमें हमारे यहांके दिव्य जीवन संघकी शाखामें अखण्ड कीर्त्तन किया गया। उसी समय मेरी २२ वर्षीय लड़कीको अपने (स्वामीजीके) चित्रके बगलमें ही साक्षात् स्वामीजी खड़े दिखायी पड़े। हम लोगोंको अत्यन्त आश्चर्य हुआ क्योंकि स्वामीजी वहां थे ही नहीं।"

—श्री पी० वेंकट सुब्बियाह, होसुर

* * * *

"यह कहना बिलकुल व्यर्थ है कि स्वामीजी अखिल विश्व प्रसिद्धिके व्यक्ति हैं। स्वामीजीकी प्रभावशाली रचनाएं पढ़नेका अवसर जिनको मिला होगा वे ही इसका अनुभव कर सकते हैं कि हिमाल

इन योगिराजमें कितना बल है। भक्त उनको भगवान कृष्णका अवतार समझते हैं, वेदान्ती उनको ज्ञानका अखिल भण्डार समझते हैं तथा योगी उनको विश्वका सबसे बड़ी यौगिक विभूति समझते हैं। गान्धी और रवीन्द्रनाथ टागुरके अनुयायी स्वामीजीको सबसे बड़ा कर्मयोगी समझते हैं। एक बार भी अगर कोई नास्तिक उनके सामने पड़ जाता है तो उसके आस्तिक बननेमें सन्देह नहीं रह जाता। जड़वादी पश्चिम भी अब उनकी महत्ताको स्वीकार करने लगा है।"

—प्रो० ई० एम० अहरी, अमृतसर।

"आज मुझे 'कल्याण' पढ़नेका अवसर मिला। उसमें सन्तोंके जितने भी उपदेश थे सभी मुझे स्फूर्ति और शान्तिदायक लगे, किन्तु आपके उपदेशोंका मेरे ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि कुछ कहा नहीं जाता। मुझे जितनी शान्ति आपके उपदेशोंसे मिली उतनी और किसीसे न मिली।"

—श्रीरामेश्वर, नैपाल।

"आपका चित्र देखनेसे मुझे जो आनन्द मिलता है वह अनिर्वचनीय है। यदि आपका प्रत्यक्ष दर्शन करनेका अवसर मुझे मिलेगा तो मैं अपनेको धन्य समझूंगा। लोगोंको स्वर्ग प्राप्त करनेपर भी उतना आनन्द न मिलता होगा जितना आनन्द आपका दर्शन करनेके बाद मुझे प्राप्त होगा।"

—श्री एम० एस० अश्वत्थनारायण, मैसूर।

"प्रायः दो वर्ष तक मैं आपके दर्शनोंके लिए लालायित रहा। अन्तमें सौभाग्यसे आपका साक्षात् दर्शन करनेका अवसर मुझे मिला और मैंने अनुभव किया कि मेरे अन्दर अज्ञान नामकी चीज नहीं रह गयी है। जिस समय आपकी यह छवि मेरी आंखोंके सामने आती है मेरा मन आनन्दसे भर जाता है। मुझे जितनी शान्ति उस समय मिलती है उतनी जीवनमें और कभी नहीं मिलती।"

—श्री मनोहरलाल, मुलतान।

"२६ जनवरी सन् १९४८के आपके पत्रने मुझे अत्यधिक आनन्द प्रदान किया है। हमारे अभ्यास और साधनामें इससे काफी बल मिला है। जब भी मैं आपका पत्र पढ़ता हू मुझे ऐसा मालूम होता है कि जैसे मेरे अन्दर एक प्रकारकी चेतनता भर रही हो। जब कभी मैं निराश या खिन्न होता हू तो मैं आपका पत्र पढ़ता हू और उससे मुझे शान्ति मिलती है। मेरा चंचल मन स्थिर हो जाता है।"

—श्री एस० नीलाचलम्, बहरामपुर।

"आपके उपदेश अत्यन्त व्यावहारिक, उत्साह वर्द्धक और शान्ति-दायक होते हैं। आपके लेखोंसे साधकोंको अपने साधना-क्रममें आगे बढ़नेमें सहायता मिलती है। मैं चाहता हूं कि अधिकसे अधिक लोग उनसे लाभ उठायें।"

—श्री के० कण्डियाह, सिंहल।